रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग ६)

परमसंत डा. श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

सिकंदराबाद (उ०प्र०)

प्रकाशक :

आचार्य, रामाश्रम सत्संग (रजि०)

सिकन्द्राबाद (उ०प्र०)

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००० (१९८३)

मुद्रक :

विवेक मुद्रणालय, जी०टी०रोड, गाज़ियाबाद द्वारा मुद्रित

पाठकों से निवेदन

मेरे गुरु परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०) के प्रवचनों के पाँच भाग अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। यह छठा भाग आपकी सेवा में प्रस्तुत है । छपाई में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं जिनका शुद्धीकरण इसके अन्त सें दिया गया है | पढ़ने से पूर्व उसके अनुसार त्रुटियों को ठीक कर लें । जो अन्य प्रवचन प्रकाशित होने के लिए उपलब्ध होंगे उन्हें भविष्य में छापने की आशा है ।

पूज्य गुरुदेव के जितने प्रवचन छप चुके हैं उनमें से कुछ तो उनके स्वयं लेखनी बद्ध हैं और शेष भिन्न भिन्न स्थानों पर सत्संग में उनके श्रीमुख से प्रस्फुटित किए गए हैं जो प्रेमी भाइयों ने यथासम्भव लिख लिए हैं और कहीं कहीं टेप भी किए गए हैं । परन्तु पुस्तक बद्ध होने से पूर्व उन सब की एक या दो रीडिंग श्री महाराज के सम्मुख हो चुकी हैं। यदि कोई त्रुटि रह गई है तो वह छपाई की ग़लती के कारण रह गई है । जब भी किसी प्रवचन की रीडिंग उनके सामने की जाती थी तो वे उसे बड़ी एकाग्रता ((Rapt attention) से सुनते थे और प्रभू के ध्यान में लंवलीन रह कर उस प्रवचन में प्रभु-प्रेम और ईश्वर कृपा का प्रतिष्ठान करते जाते थे। देखने वालों को तो ऐसा प्रतीत होता था कि वे ध्यान में समाधिस्थ हो गए हैं किन्तु ऐसा नहीं था । ईश्वर के ध्यान में तललीन रहते हुए भी वे इतने जागरूक रहते थे "कि पढ़े जाने वाले मैटर में कोई छोटी सी भी त्रुटि, चाहे वह 'हाँ' या 'न' की ही हो, तुरन्त पकड़ कर सुधरवा देते थे | अतः पाठकों से निवेदन है कि उनके प्रवचनों अथवा उनकी लिखी अनेकों पुस्तकों में से किसी में यदि कोई बात समझ में न आये तो उसे ग़लत न समझें । मनन या अभ्यास करते करते ईश्वर कृपा से कोई समय ऐसा आयेगा कि वह बात स्वयं समझ में आ जायगी । सन्तों के मुख से कोई बात ग़लत नहीं निकलती ।

दिल्ली — दासानुदास

१-१-१६८३ — करतार सिंह

विषय सूची

1. गुरु के अनुभव से फ़ायदा उठाओ
2. नाम की महिमा
3. ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया
4. संत दर्शन सत-दर्शन
5. पाँच बातें
6. भक्ति पथ में संसारी बाधायें
7. संत वाणी
8. परमार्थ में कामयाबी हासिल करने के लिए जरिये
9. सन्त वाणी
10. सतसंग के असली लाभ
11. वैराग्य
12. संसार को मन से छोड़ने से संसार का स्वामी बन जाता हैं ।
13. सन्तों की महिमा
14. सतसंग के अनुभव
15. करनी, कथनी और रहनी
16. सन्तों की सेवा का रूप दीनता व प्रेम
17. प्रेम भरी लताड़
18. अनानियत (अहंपना)
19. मन की दुनियाँ की इच्छाओं से साफ करते रहें ।
20. ईश्वरीय विचार
21. सूक्ष्म में अभ्यास की विधि
22. सन्त-मत की जरूरी बातें
23. मन के भ्रम से छुटकारा पाना हैं

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम । जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ ।

---परमसंत **डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज**

सिकंदराबाद उ.प्र.

(जन्म १९-१०-१८९४ - निर्वाण १८-०९-१९७०)

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ़ लाला जी)

फतेहगढ़, उ० प्र० निवासी (जन्म १८७३ - निर्वाण १९३१)

गुरु को अनुभव से फायदा उठाओ

(प्रवचन परमसन्त डा० श्रीकृष्णलाल जी महाराज)

दि ० २०-१०-१९६१

संतों की वाणी अनुभव की वाणी है। मेरा निजी तजुर्बा है कि जो संतों ने अपनी वनियों में लिखा है वह एक एक बात सही है । उस पर अविश्वास मत करो । पहल अपने अन्तर को शुद्ध करो, तब सब बात ठीक लगने लगेंगी ।

अन्तर को शुद्ध करने के लिए पहले अपने इखलाक (सदाचार, आचरण) की सफ़ाई की जरूरत है । इखलाक क्या है ? तुम्हारे मन की वृत्तियाँ जो तुम्हें माया में फंसा देती हैं, उनसे अपने आप को अलहदा करना और उन्हें सत् की तरफ़ मोड़ना, बुराई से भलाई पर आना और फिर भलाई स्वभाव बन जाना । दुनियाँ में जो चीजें दीख रही हैं वह सब माया है. जो उसमें लुभाव है वही मन है। मन बुद्धि को साथ लेकर इन्द्रियों के द्वारा हमें दुनियाँ में फँसाता है। इन्द्रियों को विषयों से बचाओ, बुद्धि के कहने में मत चलो, गुरु के कहने में चलो । मैंने अपने तजुर्वे से देखा है कि जहाँ मैंने गुरु का कहना नहीं माना वहीं धोखा खाया। मेरी ज़िन्दगी का तुम भी फ़ायदा उठाओ । गुरु के कहने पर सख्ती से चलो ।

हम अपनी इन्द्रियों को रोकें, इसका मतलब यह नहों है कि इन्द्रियों का इस्तेमाल ही न करें । उनका धर्मशास्त्र के मुताबिक़ इस्तेमाल करें, उन्हें regulate (संतुलित) करें । काम, क्रोध वगैरा का इस्तेमाल वहुत sparingly (यदा कदा) करें। धर्मशास्त्र के मुताविक़ उनका इस्तेमाल करेंगे तो उनमें फँसेगे नहीं ।

सचाई पर चलो, सन्तों के कहने पर चलो । जो मन के कहने पर चला वह दीन से भी गया और दुनियाँ से भी । दो जन्म बेकार गये । इसलिये गुरु के कहने पर चलो । जितना मुझसे हो सका मैंने किया लेकिन पूरे तौर से गुरु की पैरवी न कर सका ।

आप लोगों को यही नसीहत है कि जो मुझ से प्रेम करते हैं वे इन्द्रियों से बचें । सबसे बड़ा दुश्मन मन है जो हर कदम पर धोखा देता है । यही शैतान या माया का बड़ा भारी हथियार है जो जीव को बहका कर ग़लत काम कराता है और दुनियाँ में फँसाता है । इसी को काबू करना है । अगर गुरु के कहने पर चलोगे, उसकी बात मानोगे तो मन के चंगुल से छूट जाओगे । इसलिये अपने गुरु के बताये हुए रास्ते पर क़ायम रहो, परमात्मा पर भरोसा रखो और धर्मशास्त्र के मुताबिक़ दुनियाँ के व्यवहार करो । अपना आचरण सुधारों और राज़ी-ब-रजा (यथा लाभ सन्तोष) रहो । अपने लक्ष्य तक आसानी से पहुँच जाओगे।

नाम की महिमा

हरी - हरी मायने हरने वाला। दुनियादार उसके मायने लेते हैं 'दुनिया के दुःख को हरने वाला ' लेकिन भक्त इसके मायने लेते हैं ' हमारे और ईश्वर के बीच में जो चीज़ें हैं उनको हरने वाला। परमात्मा की कशिश यानी प्यार सबको अपनी तरफ खींचे हुए है। लेकिन जब कोई चीज़ बीच में आ जाती है तो खिंचाव में कमी आ जाती है। परमात्मा का प्रेम सबको खींचे हुए है और जीव में भी परमात्मा का प्रेम कुदरती तौर पर मौजूद है। आदि में दोनों का मिलन था, दोनों एक थे। जब किसी भाँति से संसारी वासनायें बीच में आ जाती हैं तो दोनों में अलहदगी हो जाती है और जब वह दुनियावी चीज़ें दूर हो जाती हैं तो दोनों एक हो जाते हैं। इसलिए जीव और ईश्वर के मिलन के लिए पहली चीज़ यही ज़रूरी है कि दुनियावी सभी चीज़ों का हरण कर लिया जाय। परमात्मा की वह सिफत तो दुनियावी चीज़ों का हरण करके परमात्मा के प्रेम का अधिकारी बनाती है 'हरी' कहलाती है।

कृष्ण - कृष्ण मायने 'खींचने वाला ' , अपने में मिला लेने वाला। जब जीव के ऊपर से दुनियावी चीज़ों का पर्दा हट जाता है तब परमात्मा की प्रेम वाली सिफत, खींचने वाली शक्ति जीव को खींच कर अपने में मिला लेती है और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

राम - राम मायने 'रमा हुआ ' आराम देने वाला, आनन्द देने वाला। जब जीव ईश्वर में मिलकर उसमें समा जाता है तो वह आनन्द स्वरुप हो जाता है।

उपरोक्त तीनों नामों (हरी, कृष्ण, राम) के उच्चारण करने का मतलब यही है कि तीनों शक्तियों का जो हमारे अन्दर रहते हुए भी दबी पड़ी हैं, हमें बोध हो और वे जीव को सांसारिक आवरण से छुड़ाकर अपने में मिलाकर आनन्द रूप हो जायें।

ॐ - ॐ के मायने शास्त्रों में उस शक्ति से हैं जो चारों जगत की स्वामी हैं - पिण्ड, ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म , और दयाल देश, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया. जिसमें इस आदि शक्ति के चारों गुण, हरण करने वाला, खींचने वाला, प्यार करने वाला और आनन्द देने वाला है, यह शब्द सब गुणों का समूह है। इस शब्द के अन्दर भी सभी शक्तियाँ मौजूद हैं. इसके उच्चारण करने का मतलब यही है कि हम अपने घट में महसूस करें, उसका ज्ञान हो और धीरे-धीरे उससे मिलकर एक हो जायें. यह परमात्मा से मिल जाने का महामंत्र है।

ऋषियों का कहना है कि ईश्वर सबसे परे है। इतना दूर जितना हम ख्याल भी नहीं कर सकते, इतना महान जितना हम अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते, इतना विशाल जो ख्याल में भी नहीं आ सकता. इसकी इस महानता का, इस दूरी का, इस फैलाव का ख्याल करने से जीव घबरा जाता है. तमाम जगत, ब्रह्माण्ड. परब्रह्म के परे वह है। सब चीज़ों को, सब वासनाओं को, सब इन्द्रिय भोगों को छोड़कर उसको पाना अत्यन्त कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा है। लेकिन संतों ने दया करके उसको बहुत ही सहज कर दिया है। वे कहते हैं कि वह सबसे परे है यह ठीक है, लेकिन वह सबसे नज़दीक भी है, इतना समीप है जितना मेहनत हमको दुनिया की चीज़ों के हासिल करने में लगती है उससे भी कम मेहनत से वह हासिल हो जाता है। मगर शर्त यह है कि उससे प्यार हो। उससे प्यार हमारी आत्मा में कुदरती तौर पर है जो सोया हुआ है मगर दुनिया की और चीज़ों में प्यार के रूप में जाहिर हो रहा है. संतों की सेवा में जाकर उसे जगाओ। जिस चीज़ को मन प्यार करता है उसे अपने पास खींच लेता है। जिस आदमी को हम प्यार करते हैं, चाहे वह जिस्मानियत (देह) के लिहाज़ से हज़ार मील की दूरी पर हो, लेकिन प्यार की वजह से हर समय हमारे दिल में मौजूद रहता है। जिससे मोहब्बत होती है उसका ध्यान करने से कभी कोई तकलीफ नहीं होती बल्कि आनन्द आता है. जिससे प्यार होता है उसके ऊपर कुर्बान (न्योछावर) करने में कितनी ही बड़ी चीज़ क्यों न हो आनन्द आता है, दुःख नहीं होता। इसलिए सबसे आसान रास्ता उस तक

पहुंचने का यह है कि बजाय इसके कि यह ख्याल करो कि वह दूर है, यकीन करो कि वह तुम्हारे नज़दीक से नज़दीक है, उसका ध्यान करो. हर समय उसको याद रखो। सोचो, वह तुम्हारा हमेशा का साथी है और उसी के पास जाकर तुम्हें सच्चा आनन्द मिलेगा. यह सब दुनिया की चीज़ें हैं उसी ने तुम्हें दीं हैं और थोड़े दिन के लिए हैं। उन थोड़े दिनों रहने वाली चीज़ों के लिए अपने प्रीतम को न भूलो। जो चीज़ें उसने दी हैं, उन्हें अपनी मत समझो. जब तक वे चीज़ें मौजूद हैं और उसने दे रखी हैं, उसकी सेवा में लगे रहो और जब वह वापिस मांगे, उसे ख़ुशी से वापस कर दो. इस तरह अपने मन को अन्तर में उससे लगाए चलो। अपनी वृत्तियों को बाहर से हटाकर उसी में लगा दो. हर समय उसका ध्यान करो।

सब दुनियांवी चीज़ों का जो ज़ाहिरा (दिखावे का) सहारा है, छोड़कर उसी मालिक का सहारा लो, उसी का असली सहारा है। अब चीज़ों को देने वाला वही है, लेकिन बाहरी रूप दूसरा है जो धोखा है। जितना तुम दिल से उसके समीप होते जाओगे, इतना लम्बा -चौड़ा रास्ता मिनटों में तय होता जायेगा। वह हमेशा-हमेशा से तुम्हारे साथ रह रहा है, लेकिन और योनियों में तुम्हारे अखित्यार में नहीं था कि इस खुदी के परदे को हटाकर तुम उससे मिलकर एक हो जाओ। लेकिन इन्सानी ज़िन्दगी में यह मौक़ा उसने तुम्हें दिया है कि तुम अपनी खुदी मिटाकर उससे मिलकर एक हो जाओ। यह कहना कि वह हमको इतने जन्मों में मिलेगा, व्यर्थ है। यह सब इस बात पर मुनहसिर (निर्भर) है कि तुम्हें उससे कितना प्रेम है और प्रेम करना तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम सांसारिक वस्तुओं में अपना लगाव और ख्वाहिशात को अपने और उसके बीच से हटा दो तो इसी जन्म की बात क्या, इसी वक्त वह तुम्हें मिल सकता है। सब कुछ अपने प्रेम पर निर्भर है. ऊपरी तौर पर हम सब कुछ उसको देते हैं परन्तु वास्तव में देते कुछ नहीं. एक क्षण मात्र के लिए इधर दिया और उधर सब वापस ले लिया।

गुरुदेव सबका कल्याण करे , सबको ज्ञान दें ।

दृष्टांत – राधा, जो कृष्ण की प्रेमिका थी, नाराज़ होकर चली गई । कृष्ण पीछे पीछे चले गये । जब बहुत दूर चली गई तो ख्याल आया कि मैं क्यों नाराज़ हो गई । तो लौट कर देखा कि कृष्ण मौजूद हैं। आत्मा परमात्मा से विमुख हो गई है और दूर चली गयी है जब लौट कर देखती है तो उसे अपने समीप पाती है। जीव राधा है, कृष्ण ईश्वर है।

फुट नोट : यह प्रवचन गोरखपुर सत्संग में पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से सुनकर लिखा गया था और राम संदेश मासिक पत्रिका में छप चूका है। किन्तु सब प्रवचनों को संत वचन में देने से पहले दो या तीन बार पढ़कर सुनाया जाता था और यदि वे ठीक समझते थे तो उसमे आवश्यक सुधार कर देते थे। जब उपरोक्त पढ़ा जा रहा था उस समय सदा कि भांति वे भाव मुद्रा में बैठे हुए थे। प्रवचन के अंत में उन्होंने राधा कृष्ण की एक सुंदर कथा सुनाई- मनो वे उस लीला को स्वयं देख रहे हो। कथा सुना कर कहने लगे "इसे विस्तार से लिख देना – "Expand" । उनकी उस आगया का पालन उस समय न हो सका। तदुपरांत वह कथा भूल गई। केवल उस समय जो "दृष्टांत" नोट किया था वह रह गया। 'महेश'

ईश्वर की प्राप्ति का यक़ीनी जरिया

गोरखपुर ३०-१-६६

ईश्वर की प्राप्ति के दो जरिये हैं- एक हठयोग, दूसरा राज- योग । हठयोग में पहले गुदा के मुकाम (मूलाधार) से छिपी हुई शक्तियों को अभ्यास द्वारा जगाया जाता है और इन पर अपना अधिकार क़ायम किया जाता है। इस तरह से क्रमशः ऊपर के चक्रों को जगाते हुए देह की तमाम शक्तियों पर क़ाबू पाकर ईश्वर में ध्यान लगाया जाता है । यह तरीक़ा है तो सही और पहले ऋषियों ने इसी को अपनाया है, लेकिन आजकल के जमाने में अव्वल तो वातावरण ही ऐसा नहीं है जिससे यह साधन बने। आदमियों की इच्छा-शक्ति कमजोर हो गयी है, देह का बल पहले के 'लोगों की अपेक्षा कम हो गया है, फ़ुरसत भी मनुष्यों को इतनी नहीं है, न खुराक ही अच्छी मिलती है जो इसके लिए जरूरी है । और फिर जानने वाले भी नहीं रहे । जो हैं भी वह पूरे माहिर यानी Expert नहीं हैं, जिनसे कुछ कामयाबी होती भी है तो सिर्फ जिस्म तक ही रहती है, जिस्म तन्दुरुस्त रहता है, बीमारी नहीं होती है । लेकिन असली ग़रज़ जो मन के निरोध, शान्त करने की है वह पूरी नहीं होती । फिर, इसके साधन में शक्तियों के जागने के साथ अभ्यासी भोगों और सिद्धि शक्तियों में फँस जाता है जिससे रास्ते से दूर जा पड़ता है। इसलिए सन्तों ने पिछले तरीकों का त्याग कर दिया और बहुत कम या बिरले सन्त इसे अपनाते हैं। उन्होंने गैर जरूरी चीजों को छोड़कर सिर्फ़ ज़रूरी चीजों से ताल्लुक रखा जो चार हैं- (१) इन्द्री, मन, बुद्धि को काबू में करना और खुदी का नाश करना-यानी Character formation; (२) अपनी आत्मा का अनुभव करना Self realization (३) मन को एकाग्र और शुद्ध करना Concentration; (४) (विचार मनन) बुद्धि को शुद्ध करना Meditation यानी ईश्वर के गुणों का विचार करना । इन चारों तरीक़ों का नतीजा God realization यानी ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना है।

दूसरा तरीक़ा सन्तों का है जो राजयोग कहलाता है। इसमें भी कई तरीके हैं--कोई प्रकाश को लेता है, कोई नाम के उच्चारण करने पर ज़ोर देता है, कोई महापुरुषों की सौहवत पर ज्यादा जोर देता है । लेकिन जहाँ तक देखने में आता है सन्तों के हर एक तरीकों में यह तीनों साधन (१) महापुरुषों की सौहबत यानी सत्संग, उनका ध्यान (२) परमात्मा के नाम का उच्चारण करना (जुबान से या घट में सुनना), सुमिरन और भजन झौर (३) प्रकाश या शब्द का ध्यान किसी न किसी शक्ल में पाया जाता है । बाज़ों ने सत्गुरु की तलाश, उनकी सौहवत और परमात्मा के नाम पर ज़ोर दिया है । किसी ने सच्चे गुर की तलाश और उनकी सौहबत पर ज्यादा ज़ोर दिया है और नाम के उच्चारण को गौण (Secondary) रखा है। बाज़ सन्तों ने गुरु से नाम लेकर एकान्त सेवन करके नाम के उच्चारण पर ज्यादा ज़ोर दिया है और गुरु की सौहबत पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया है। बाज़ों ने प्रकाश के ध्यान को ही मुख्य माना है **लेकिन हर तरीके में परमात्मा की मौहब्बत और दुनियाँ से उपाराम होना ज़रूरी बतलाया है।**

संतमत के कुछ संतों का यह विचार है कि सच्चे गुरु के मिलने "पर उनका बाहरी और अन्दरुनी सत्संग करने और उनसे प्यार करने पर त्याग खुद-ब-खद हो जाता है। त्याग पर अलहदा जोर देने की आवश्यकता नहीं है । उन्होंने प्रेम को ही मुख्य माना है । यह बिल्कुल ठीक है, पर तजुर्वा यह बतलाता है कि ऐसे अभ्यासी का, जो पूर्ण तौर से अपने गुरु के कहने में हो और उसी का आशिक़ होकर तन, मन, घन सब अर्पण कर दें, मिलना बहुत मुश्किल है । हजारों अभ्यासियों में से कोई एक दो निकलते हैं और अगर कोई ऐसा पूर्ण गुरु है जो ईश्वर-रूप है और ऐसा शिष्य जिसने सब तन मन धन हमेशा के लिए अपने गुरु पर कुर्बान कर दिया है तो उसको दुनियाँ की वस्तुओं से खुद ही त्याग हो जायगा और उसका यह प्रेम उसे भवसागर से पार कर देगा । इसलिए हमारे यहाँ के सत्संगी भाइयों को चाहिए कि प्रेम के साथ साथ सत्संग और भजन में

अपने मन को देखते चलें और जिन जिन चीज़ों में मन फंसा हुआ है और असली लक्ष्य, यानी ईश्वर से दूर ले जाता है, उनका त्याग करना चाहिए । यही सच्चा प्रेम है। अगर प्रेम के साथ मन की वासनाओ का भी त्याग करते रहेंगे तो रास्ता जल्दी कटेगा । ज़्यादातर देखने में यह आता है कि सत्संग में सत्संगियों की हालत बहुत अच्छी रहती है, जहाँ सत्संग से अलग हुए वह हालत जाती रहती है और कोई तरक्की नहीं मालूम होती । इसकी वजह यही है कि सत्संग के वक्त थोड़ी देर के लिए मन दुनियाँ की चीज़ों को छोड़कर उपराम हो जाता है . और ईइवर में मन लग जाता है । लेकिन वाद को उन्हीं वासनाओं में फंस जाता है और कोल्हू के बैल की तरह बरसों अभ्यास करने पर भी जहाँ का तहाँ रहता है। इसलिए सब भाइयों को प्रेम के बढ़ाने के साथ-साथ दुनियाँवी विषयों से जहाँ तक हो, दूर रहना चाहिए । दुनियाँवी चीज़ों में उतना ही फँसना चाहिए जिस के वगर गुज़ारा न हो । गुरुदेव सवका कल्याण करें।

संत दर्शन-सत् दर्शन

गाजियाबाद ता० ८-४-६६

निगुर्ण के दर्शन नहीं होते, आभास होता है । यह प्रत्येक साधक के बस का नहीं है.। सगुण के दर्शन सरलता से हो सकते हैं और हर एक साधक को इसके लिए सुगमता है । सन्तों के हृदय में ईश्वर विराज़ता है। उनका शरीर ईश्वर का मन्दिर है । उन स्थल शरीर को ऋण (minus) करके ईश्वर का दान हीः ईश्वर दर्शन है, सन्त का संग ही ईश्वर का (या सत् का) संग है। जो ईश्वर के सच्चे प्रेमी हैं वे इस दर्शन और सत्संग में ही आनन्दित रहते हैं। वे इसी मैं सदा सुखी रहते है। मोक्ष उनके लिए तुच्छ है । सूफ़ियों में कहावत है- हम नशीनी ताअते वा औलिया, बहतर अज सदसाल ताअत बेरिया ।।" भावार्थ--सन्त के एक क्षण के सत्संग से जो फ़ायदा होता है वह सैंकड़ों बरसों की , तपस्या से कहीं ज़्यादा है।

* भगवान सदा अपने प्यारे भक्तों के पास रहते हैं। सन्तजन 'इंश्वर के अनन्य भक्त होते हैं। कबीर साहंब ने कहां है :-

"मन मेरा पंछी भया, उड़कर चला अकास ।
सत्तलोक खाली पड़ा, साहिब सन्तन पास ॥
रास बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय ।
कि" कल जो सुख साधू संग में, सो बेकुण्ठ न होय ॥

जो सुख प्रेम में है वह लय में नहीं है । इसलिए ईश्वर प्रेमी मोक्ष से बेपरवाह रहते हैं श्रोर ईश्वर की भक्ति मांगते हैं।

रामायण में इस प्रकार की भक्ति के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । आत्मा परमात्मा की अंश हैं। दोनों में आपस में प्राकृतिक प्रेम है और एक दूसरे से मिलकर एक होना चाहते हैं। लेकिन मन बीच में है । जब वह हट जाता है तब दर्शन होता है । आइना है, लेकिन उस पर जगाल चढ़ी हुई है, इसलिए मुखड़ा दिखाई नहीं दता । जब जगाल छूटे तब मुखड़ा दीखे। यह् दिल आइना है। इसी में प्रीतम के मुखड़े के दर्शन होते हैं। लेकिन मन रूपी जंगाल ने इसको ढक रखा है । जब यह मन साफ़ हो तब ईश्वर का दर्शन होगा ।

यह मन आसानी से नहीं साफ़ होता- यह कुत्ते की दुम की तरह है जो सीधी नहीं होती । कोई कोई सन्त कहते हैं कि यह रस्सी की तरह है--अगर जल भी जाय तो बल नहीं जाते । साधक में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि वह खुद अपने मन के मेल को दूर कर सके । इसका सहज उपाय एक ही है और वह है सन्तों का दर्शन, उनका सत्संग और उनके बताये रास्ते का अनुगमन । जैसा कि ऊपर आ चुका है, सन्त की थोड़ी देर की सौंहबत का इतना फ़ायदा है जो संकड़ों सालों की तपस्या से नहीं होता। कबीर साहब ने कहा है :--

एक घड़ो आधी घड़ी, आधी ते पुनि आध।
कबीर संगत साधु की, कर्ट कोटि अपराध ।।।

संत की सेवा में ज्ब भो जाओ, साफ़ दिल से जाओ-जो अन्दर वही बाहर, दोहरापन (Hypocrisy) न हो । सन्त की सौंहबत से इखलाक़ सुधरता है (Character formation) होता है) । इन्द्रियों, मन और बुद्धि पर अधिकार (control) होता है अभी तक ये तुम्हारे ऊपर क़ाबू किये हैं फिर तुम इनके ऊपर क़ाबू करोगे, इनके मालिक

बनोगे । और इस तरह जब आत्मा मन के फन्दे से न्यारी हो जायगी तब ईश्वर का दर्शन होगा ।

जो चीज़ें तुम अपनी समझते हो वो तुम्हारी नहीं हैं—यह धोखा है । तुम उनके हो । उनमें तुम्हारी आसक्ति है और वह खुदी (Egoism अहं) की वजह से है । खुदी अहं ही सबसे जबरदस्त पर्दा है । यह इस तरह समझो कि माला के दानों में सुमेर। सब बुराइयों और रुकावटों का सिरताज अहं (खुदी) हैं। इस अहं के सुमेर में सब बुराइयाँ पिरोई हुई हैं। इसे तोड़ दो, सब दाने बिखर जायेंगे, सब बुराइयाँ दूर हो जावेंगी । यह हो कैसे ? इस का उपाय यह है कि असल को पहचानो। सच तो यह है कि दुनियां की सब चीज़ें न तुम्हारे साथ आई थीं और न साथ जांयेंगी । यह दुनियां ईश्वर की है और उसी ने तुम्हें यहां के सामान दिये हैं । तो यही ख्याल मज़बूत करो कि यह मेरी नहीं हैं, उनकी हैं । खाना सामने रखा है, अचानक कोई भूखा आ गया ख़ुद न खाकर उसको दे दो । देखोगे कि खाने में इतना आनन्द नहीं मिलता जितना दे देने में ।

हर शख्स जो पैदा हुआ है ईश्वर के दर्शन पा सकता है। मनुष्य जन्म और गुरु--दोनों संस्कारं-वश मिलते हैं, लेकिन इतने से काम नहीं चलता । मनुष्य चोला मिला और गुरु भी मिले लेकिन चाल नहीं चलती, तरक्की नहीं मालूम होती । इसका क्या कारण है ? अधिकार नहीं बना । जब तक अधिकार नहीं बनेगा 'ईश्वर' नहीं मिलेगा । अधिकारी बनने के लिए पुरुषार्थ और तप करना पड़ता है । मन को क़ाबू में करो, चौबीसों घंटे उसकी चौंकीदारा करो, इधर उधर मत जाने दो । गुरु रास्ता चल चुका होता है । वह जानता है कि मन कैसे और कहाँ घुमाकर पटकता है । वह आगाह करता है कि देखो फलाँ काम मत करो अगर उसके कहने में

चलते हो तो फ़ायदा उठाते हो वर्ना गुरु तो कह कर आगाह कर देता है, नुक़सान तुम अपना खुद करते हो ।

आनन्द विषयों में नहीं है, मन में है । जब वह विषय के सम्पर्क में आता है तब आनन्द महसूस करता है। उदाहारणार्थ संगीत को लीजिए । किसी को शास्त्रीय संगीत पसन्द है तो किसी को हल्के गाने । पाश्चात्य संगीत भारतीयों के लिए एक हू हुल्लड के सिवा और कुछ नहीं प्रतीत होता । अगर संगीत में आनन्द होता तो सबको एक सा प्रतीत होता । इसी तरह खाने पीने की चीज़ों को ले लीजिए | किसी को मीठा पसन्द है--किसी को उससे नफ़रत है कोई चटपटी चीज़ें पसन्द करता है तो कोई खट्टी । पसन्द होना या नफ़रत होना व्यक्तिगत है और प्रत्येक की मन की दशा पर आधारित है । इसलिये आनन्द विषयों में नहीं है बल्कि मन में है । जितना मन शुद्ध होता जाता है हम शान्त और आनन्दित होते हैं ।

जितना मन काबू (control) करते जाओगे उतना रास्ता तय होता जायगा । पहले इन्द्रियों पर क़ाबू, करो, फिर मन की ख्वाहिशात पर और फिर बुद्धि पर, तब सत पर आ- पाओगे। यहां से परमार्थ का रास्ता शुरू होता है।

किसी के पास चाहे कितना भी रुपया हो, कितनी ऊंची इज़्ज़त हो, चाहे कितनी अच्छी उसकी स्त्री हो, औलाद भी अच्छी हो, क्या उसको शांति हैं ? नहीं । शान्ति इन चीजों में नहीं हैं क्योंकि ये सदा बदलने वाली हैं, नाशवान है । जो चीजें हमेशा कायम नहीं रहने वाली है उनमें शान्ति नहीं है। थोड़ी देर का मन का सुख है, मगर उससे खुदी का पर्दा और मोटा होता है। मेरे पास इतना धन है, मेरी इतनी इज़्ज़त है, मेरे बीवी बच्चे इतने अच्छे हैं, इसका अहंकार हो जाता है । इन चीज़ों से अपनी तवज्जह (Attention) को हटाकर आत्मा में लगाओ । जिसने अपनी तवज्जह

(Attention) को आत्मा में स्थित कर दिया है वही दरअसल सुखी है। आत्मा उस अविनाशी एकाधार में लय हो जाती है । वही परम सुख है, यही जीवन का लक्ष्य है।

अपनी तवज्जह (Attention) को पलट (Divert) दो, यानी कर्ता की दृष्टि से नहीं दृष्टा की दृष्टि से देखो । देखते रहो कि मन हमें कहाँ ले जा रहा है, अगर दुनियां की तरफ ले जा रहा है तो उसे फेर दो । इस तरह करने से आत्मा शक्तिशाली होती जाती है और मन क्षीण होने लगता है । एक दिन वह आयेगा जब आत्मा ऊपर आ जायेगी, मन नीचे दब जायेगा । बुराई से अच्छाई पर, यानी असत् से सत् पर आ जाओगे । यह सृष्टि माँ का पसारा है, माँ खेल खेल रही है । यह जगत उसका बाहरी रूप है । उसका खेल देखो, मगर फंसो मत । माँ के अन्दर का रूप देखने की कोशिश करो । उसमें जो शक्ति काम कर रही है वही ईश्वर या शिव है, उसी ईश्वर का दर्शन करो । माँ के हर खेल में वह छुपे तौर से खेल रहा है ।

कम तीन चीज़ों की मिली जुली कार्यवाही से होता है । पहले बुद्धि में विचार आता है, फिर मन में ख्वाहिश होती है, तब इन्द्रियाँ उसे करने लगती हैं। मन खाली बैठेगा तो सोचेगा, इसलिए उसे खाली मत बैठने दो । उसे राम- नाम, सतनाम या कोई सा ईश्वर का नाम दे दो । चौबीसों घन्टे उससे रामनाम का जाप कराओ । मन से नाम लो ईश्वर का, जिससे अधिकार बने, और संगत करो गुरु की जिससे चाल चले ऊपर की । सदा उनकी कृपा का अवलम्बन रखो । यह मन आखिर वक्त तक धोखा दे सकता है । राम नाम की नौका में बैठकर भव-सागर से पार हो जाओगे। अंतिम साँस तक राम नाम न छूटे । एक पैर ज़मीन पर है और एक किश्ती में। समझते हैं कि दरिया पार हो गया। लेकिन मन यहाँ भी धोखा दे सकता है। यह आखीर वक्त तक धोखा देता है। इसलिये रामनाम और गुरु पा का सहारा कभी मत छोड़ो ।

`जब जब मन धोखा दे, दुआा करो, मदद मिलेगी । दुआ में बड़ा असर है। जहाँ ईश्वर रहता है वहीं पास ही मन भी रहता है। जब तक ईश्वर की याद रहती है, मन दूर खड़ा रहता है । जब ईश्वर को भूल जाते हैं, मन फौरन आकर दबा लेता है। इससे बचने का उपाय है नाम का सतत उच्चारण । हमेशा नाम ही मन के हमले से बचा ले जायगा ।

गुरु का ध्यान मन में और राम का नाम आत्मा से लेता रहे । राम जो सब में रमा है । उसका चाहे कोई भी नाम ले लो, बात एक ही पर पहुंचती है । जो चारों जगत का मालिक है, 'हरी' जो दुख का हरने वाला है, 'शिव"-जो दुनियाँ का मालिक है लेकिन यह सब शुरू शुरू में नहीं हो पाता । सब्र करो और बाधाओं से लड़ते चलो । '

सभी महापुरुषों ने सन्तों के नाम, जप और सत्संग की महिमा गाई है । नामी से नाम बड़ा है, जहाँ उसका नाम लिया और वह तुम्हारे साथ है ।

"समझो हमें वहीं पर, दिल है जहाँ हमारा"।

भाव को स्वभाव में बदल दो। किताबों से भी भाव मिलता है, गुरु के वचनों से भी भाव मिलता है। दोनों से फायदा उठाओं। गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करेंगे।

पाँच बातें

सत्संग में आकर पाँच बातें हर प्रेमी भाई को समझ लेनी चाहिये । पहली यह है कि दुनियाँ की सब चीज़ें और अपना शरीर नश्वर है । केवल एक आत्मा ही ऐसी चीज़ है जिसका नाश नहीं होता । अगर हमारे शरीर में से वे सब चीज़ें हटा दी जायें जो नश्वर हैं तो अन्त में जो बचेगा वह एक-रस क़ायम रहने वाला है। उसी को 'आत्मा' कहते हैं। वही हमारी जान व सुरत है ।

दूसरी यह कि इस आत्मा का भी एक असल भण्डार है जहाँ से यह आई है और वह कुल जिसका यह अंश है, सच्चा मालिक (अंशी) है जिसे लोग परमेश्वर, सच्चिदानन्द, अल्लाह और अगणित नामों से पुकारते हैं ।

तीसरी यह कि आत्मा का गुण पानी की बूंद की तरह है । जिस तरह हर क़तरा या पानी को बूंद क़ुदरती तौर पर अपने असल भण्डार समुद्र को वापस जाना चाहती है वैसे ही आत्मा का प्रकृत प्रेम एवं लगाव अपने असल भण्डार सच्चे मालिक की तरफ़ है ।

चौथे यह कि जैसे आत्मा की चाह अपने असली भण्डार में समा जाने की होती है वैसे ही उस सच्चे मालिक को यह ख्याल होता है कि समस्त आत्मायें उसकी गोद में आ जायें ।

पाँचवी यह कि उस सच्चे मालिक परमेश्वर की ओर से यह प्रबन्ध है कि समय-समय पर उसमें से रूहानी धारें प्रकट होकर पृथ्वी लोक पर उतरती हैं, सतगुरु रूप धारण करके जीवों को निज भण्डार में समा जाने की राह बतलाती हैं और जो आत्मा- इच्छुक होती हैं, उन्हें अपने प्रीतम के मिलने में पूरी-पूरी सहायता करती हैं । कुछ को साथ ले जाती हैं और बाक़ी के लिये बीज छोड़ जाती हैं ताकि वे भी उस राह पर चल कर अपने लक्ष्य को पूरा करें । इन्हीं को अवतार, सतगुरु,

औलिया इत्यादि नामों से पुकारते हैं। अगर किसी को भाग्य से ऐसे सद्गुरु मिल जायें तों उसे चाहिये कि उनकी शरण लेकर अपना काम बना लें।

भक्ति के पथ में संसारी बाधायें

इलाहाबाद, १३-११-१९६९

सन्त-महात्माओं और ईश्वर भक्तों के जीवन-चरित्र पढ़ने से यह मालूम होता है कि दुनियाँ के लोगों ने ईश्वर-भक्ति के रास्ते में बड़ी-बड़ी व्याधियाँ और मुसीवर्तें पैदा कीं । ईसा और मंसूर को सूली पर चढ़ना पड़ा, मीरा को विष दिया गया, शम्स तंबरेज की खाल उतारी गई, गुरु तेशवहादुर जी को जलते तेल से नहलाया गया, गुरु गोविन्द सिह जी के वच्चों की जीते जी दीवार में चुनवाया गया। इस तरह की हज़ारों मिसालें, मिलती हैं । सन्त महात्माओं को दुनियाँ वालों ने हमेशा तंग किया, उन्हें तरह तरह के दुख दिये, जिससे वे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही न कर सकें । घोर कलयुग आता जा रहा है । आगे जाकर किस वक्त में क्या मुसीबत आयेगी इसका अन्दाज़ नहीं हो सकता लेकिन जो कुछ सन्तों और महापुरुषों ने कहा है उसे सोच कर रोंगटे ख़ड़े हो जाते हैं। अगर यह अत्याचार न हों तो प्रभु के प्यार की परीक्षा कैसे हो, उसमें परिपक्वता कैसे आये ? इसलिए जो मालिक को सच्चे दिल से प्यार करता है वही उन मुसीवर्तों को सहन कर सकेगा और भक्ति और परमार्थ के रास्ते से डिगमिंग नहीं होगा ।

यह दुनियाँ काल (शैतान, माया) का पसारा है । काल ने संबको फाँस रखा है । परमार्थ-पथ पर चलना इस फन्दे से अपने आप को निकालना है लेकिन काल अपनी दुनियां से किसी को निकलने नहीं देती जैसे-जैसे अभ्यासी परमार्थ-पथ पर अग्रसर होता जाता है काल उसके लिए अधिकाधिक बाधाएँ पैदा करता है और जो पहुँचे हुए हैं, जैसे सन्त, माहात्मा और साधुजन, उनके लिए मुसीबतों का रूप और भी-भयंकर होता जाता है | सबसे पहले मुसीबत घर वालों की तरफ से पैदा होती है । भक्तों के पीछे जात बिरादरी और छुआछूत की बाधा घर वालों की तरफ से लगती

हैं । घर वाले रोकते हैं कि किसी तरह परमार्थी कार्रवाही न होन पावे, सत्संग में न जाने पावे, बदनाम करते हैं और हँसी उड़ाते हैं। यह सब भगवान की मौज और भविष्य में किसी अच्छाई के लिए हो रहा है।

एक कहानी है। किसी घर में घड़ी नहीं थी । उस घर का एक आदमी एक घड़ी खरीद लाया और दीवार पर लटका दी । वह घड़ी हर समय टिक-टिक करती रहती थी । उस घर में एक अन्धी बुढ़िया रहती थी । उसने न कभी घड़ी देखी थी और न उसकी क़दर जानती थी । घड़ी की टिक-टिक उसे हमेशा परेशान करती थी और वह चाहती थी कि उसे फेंक दे, लेकिन उसका बस न चलता था । एक दिन घर में चोरी हो गई । उसने कहा कि इस मनहूस घड़ी की वजह से हुई है। इसके बाद एक-एक करके कई बच्चे बीमार पड़े । बुढ़िया ने कहा कि जबसे यह टिक-टिक वाली मनहूस घड़ी घर में आई है, हमारे घर पर मुसीबत छा गई है। इसे घर से बाहर फेंक दो, पर उसकी बात किसी ने न सुनी । एक दिन उसके घर में कोई बच्चा मर गया। बस फिर क्या था । बुढ़िया का गुस्सा हद से गुजर गया। वह अपने आपको न रोक सकी । उसने टटोलते-टटोलते घड़ी को पा लिया और पहले तो उसे खूब कुचला फिर घर से बाहर फेंक दिए ।

जब किसी घर में सन्त पधारते हैं या कोई दुनियाँदार उनकी सेवा में जाता है, अथवा किसी सतसंग में शामिल होता है, या उपदेश ले लेता है तो उसके घर वाले उसके पीछे लग जाते हैं भर घर की हर मुसीबत और बला की जिम्मेदारी सत्संग या सन्त महात्मा के मत्थे मढ़ देते हैं । कहते हैं कि जब से इन महात्मा जी का आगमन हुआ है इनका सत्संग किया है, मुसीबत ही मुसीवत आ रही है । कहने का मतलब यह है कि दुनियाँ ने सन्तों और उनके भक्तों और सेवकों को कभी चेन से नहीं रहने दिया और न रहने देगी वल्कि रोज़ नई से नई व्याधि पैदा करेगी । सच्चे जिज्ञासु इसको अपने प्रीतम की मौज और उसका उपहार समझते हैं । इससे उनका कोई नुक़सान नहीं होता बल्कि

जितनी ज्यादा दुनियाँ उनको तंग करती है उत्तनी ज्यादा भक्ति बढ़ती है और दुनियाँ से वेराग पैदा होता है।

यहीं पर सच्चे और झूठे की परख होती है । जो मालिक के सच्चे भक्त हुए हैं उन्होंने दुनियाँ की तरफ से निरादर, अपमान और दुर्व्यवहार आदि सभी बातें सही हैं और सब कुछ सहन किया है। दुनियाँ के सामने उन्होंने एक आदर्श पेश किया है कि चाहे दुनियाँ बाले बदनामी करें या नेकनामी, चाहे कोई बुरा कहे या दुतकारे, हमें इसकी परवाह नहीं। जिन्होंने भक्ति का रास्ता पकड़ा उन्होंने अपनी दुनियाँ उजाड़ कर रख दी। संसार और परमाथर्थ, लोक और परलोक दोनों एक साथ नहीं मिल सकते। एक को दूसरे पर कुर्बान करना पड़ेगा। अगर परलोक चाहते हो तो दुनियाँ छोड़नी पड़ेगी । मगर दिखाने के लिए तोड़-फोड़ नहीं कंरनी चाहिए। कभी ऐसे अवसर भी आवेंगे, जब मालूम हो जावेगा कि भक्ति कहाँ तंक पहुँची है । जिसमें सच्ची और पक्की भक्ति होगी वही प्रभु के दरबार में पहूँचेगा । ढोंगी और कपटी के लिए मालिक के दरबार में कोई जगह नहीं है ।

कभी-कभी भक्ति और प्रेम का एक ज्वारभाटा सा आता है और उसमें साधक अपने को यह समझने लगता है कि मैंने सब कुछ पा लिया । मगर अक्सर ऐसी बाढ़ स्थिर नहीं रहती । एक भक्त ने ईश्वर प्रेम के आवेश में आकर अपने पैरों में पत्थर मारने शुरू कर दिये । उसने कहा कि अगर ईश्वर नहीं मिलता तो मैं अपने पैरों को पत्थर मार-मार कर कुचल डालूँगा । मगर उसकी यह भक्ति कच्ची थी। पैर भी कुचले गये और ईश्वर भी न मिला । यह ढोंग है। अगर थोड़ी देर के लिए आँखों से आँसू वहने लगें, कुछ क्षणों के लिए बुद्धि तर्क वितर्क छोड़ दे. और मन शान्त हो जाय तो क्या यह असली प्रेम है? क्या इसमें स्थिरताओ गई ? सतसंग में आकर गुरु के चरणों में बेठने से, सत्संग के वातावरण से थोड़ी देर के लिए हरेक साधक पर ऐसी अस्थिर (Temporary) हालत गुजरती है मगर जहाँ घर पहुँचे और बच्चों ने लिपट कर मीठी-मीठी बातें कीं या स्त्री ने कुछ कह

सुन दिया, सारी भक्ति धुआँ हो जाती है। फिर लौट कर वहीं आ जाते हैं जहाँ थे । भक्ति का वेग आने से हमेशा के लिए गुब्बार नहीं दूर होता । किसी तालाब की सतह पर काई जमी है । हाथ से हटा दो तो साफ़ पानी दिखाई देने लगेगा लेकिन फिर आस-पास से आकर काई उसको ढ़ँक लेगी। इस तरह का वेग आना मन का ऊँचा भाव है। यह लक्षण तो अच्छा है पर स्थायी (Permanent) नहीं है । इस तरह के क्षणिक भाव से क्या ईश्वर मिल गया ? नहीं । उसे कोशिश करके स्थायी (Permanent) बनाओ, हर समय वही हालत रहे । दुनियाँ की हर चीज़ में ईश्वर फा रूप देखो, हरेक का काम उसकी सेवा समझ कर करो ।

दुत्तियाँ में जब तक रहना है, यहाँ के कर्म तो करने हीं पड़ेंगे । एफ ही कर्म फँसाता है और वही निकालता है । यदि उस कर्म के करने में अपने को शामिल कर दोगे तो फंसायेगा और अगर उसे ईश्वर का समझ कर और ईश्वर की सेवा समझ कर करोगे तो वही कर्म बन्धन से छूड़ायेगा । मालिक की याद बराबर बनी रहेगी और प्रेम ब भक्ति पक्की होतो जायेगी। मन से सोचो और बुद्धि से विचार करो कि यह लड़का जिसे तुम अपना कहते हो वह किसका है ? क्या तुम्हारे साथ आया था या तुम्हारे साथ जायेगा ? यह मकान किसका है ? क्या तुम साथ ले जाओगे ? इसी तरह हर चीज के बारे में सोचो तो देखोगे कि कोई तुम्हारा नहीं है । न तुम्हारे साथ आया था न जायेगा । यहाँ की कोई चीज़ तुम्हारे काम नहीं आयेगी । यह सब फँसाने वाली हैं । न मालूम तुम्हारी कितनी शादियाँ पिछले जन्मों में हुई, कितने बेटे बेटियां हुई, कितने मकान बने, मगर अभी तृप्तिः नहीं हुई ? यह सब तो होता रहा है और आगे भी हो सकता है, लेकिन मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता । इसी मनुष्य योनि में ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, दूंसरी में नहीं । इसलिए इंसे अमूल्य जानकर इसका उपयोग ईश्वर प्राप्ति के लिये करो।

यह जिन्दगी झुठी जिन्दगी हैं । आत्मा मलीन मंन के पर्दों में दबी हुई हैं । जब वह. पर्दे हट जाते हैं और आत्मा निखर जाती हैं तभी असली जिन्दगी शुरू होती हैं। जब किसी पर ईश्वर कृपा होती हैं और वह उसे अपनाना चाहता हैं तो उसके बन्धन टूटने लगते हैं । सबसे पहले उसकी प्यारी से प्यारी चीज उससे छीनी जाती हैं । दुनियांदार इसे देखकर रोते हैं, सन्त खुश होते हैं कि हे प्रभु ! कितना अच्छा हैं । इसे लेकर तूने मेरा बन्धन काट दिया । इस तरह हर कदम पर इम्तहान होता हैं । बगैर इम्तहान के कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता । हर कुर्बानी करनी पड़ेगी । अगर उसे पाना चाहते हो तो दुनियाँ की चीज़ें तो क्या गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी ।

जब तक तन नाहीं जरत, मन नाहीं मर जात ।
तब लगि मूरत व्यास को सपनेहु नाहि लखात ॥

यह दुनियाँ धोखा दे रही हैं। दिखाई कुछ दे रहा हैं असलियत कुछ और हैं। जो असल हैं वह सिर्फ़ ईश्वर हैं, उसे पाने की कोशिश करो ।

जब हमें किसी चीज से सुख मिलता हैं तब हम ईश्वर को बड़ा धन्यवाद देते हैं, और जब किसी चीज से दुख मिलता हैं या मुसीबत आती हैं तो ईश्वर से दूर भाग खड़े होते हैं या उसे मजबूरी में बर्दाश्त करते हैं, लेकिन ईश्वर को धन्यवाद नहीं देते और न उसमें खुश होते हैं । यही कहते हैं कि ईश्वर को ऐसा ही मंजूर था । लेकिन यह मालिक की मर्जी के साथ Cooperate (सहयोग) करना नहीं हैं । आत्मा अभी निखरी नहीं ।

असल निश्चार तब होगा जब लड़का मरने पर भी वही खुशी हो जो लड़का पैदा होने के वक्त लोग मनाते हैं। पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज जिगर के कैंसर से पीड़ित थे। उन्हें बहुत तकलीफ़ थी लेकिन वे सदा प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। किसी भक्त ने उनसे निवेदन किया कि आप इसे अच्छा करने के लिए ईश्वर से दुआ क्यों नही करते हैं ? ईश्वर अपने प्यारे भक्तों को ही इतनी तकलीफ़ क्यों देता है ? उन्होंने कहा--"अगर तुम्हारा माशूक़ तुम्हारे मुंह पर प्यार से एक थप्पड़ लगा दे तो उसे तुम तकलीफ़ समझोगे या उसकी एक अदा ? क्या तुम उससे खुश होगे या नाराज़ ? इसी तरह तकलीफ़ भी माशुक़ की एक अदा है । ईश्वर हमार प्रियतम है और प्यार में उसने अगर कोई मुसीवत भेज भी दी तो वह उसकी अदा है। इसमें हमें बड़ा आनन्द आता है।" कहने का मतलव यह है कि जब तक पूर्ण समर्पण नहीं हो जाता, ऐसी अवस्था नहीं आती ।

दुख बर्दाश्त करने के चार रूप हैं : -

(१) मजबूरी से दुख बर्दाश्त करना । यह राज़ी-ब-रजा (यथा लाभ सन्तोष) नहीं है ।

(२) दुख को प्रभु की कृपा समझ कर बर्दाश्त करना ।

(३) दुख आवे तो अपने आपको सराहे और सोचे कि हे प्रभू ! तेरी बड़ी कृपा है। न मालूम कितनी बड़ी मुसीबत थी जो / तूने इतने थोड़ में ही काट दी। न मालूम सूली पर ही चढ़ना पड़ता जो काँटा ही छिद कर रह गया ।

(४) दुख आवे तो यह सोचे कि वह मेरे माशूक़ की तरफ से एक तोहफा है, और उसमें खुश हो। शेर खा रहा है, शरीर की बोटी-बोटी नोच कर चवा रहा है और फिर भी आवाज निकल रही है "शिवो हें शिवो हूँ ।" जो खा रहा है वह ईश्वर और जिसे खा रहा है वह भी ईश्वर । जलते हुए तवे पर बेठे हैं, सिर पर उबलता हुआ तेल डाला जा रहा है, दूर दूर तक धुआँ और दुगंन्ध उड़ रही है

और फिर भी मुह से निकल रहा हैं- वाह गुरू "वाह गुरु ।" यह हैं असली और पूर्ण समर्पण भर सच्ची रशाजी-इ-रजा (यथा लाभ सस्तोष)

कोई चीज शुफ्त नहीं मिलती । क्रीमत देनी पड़ती हैं। जो दोज् जितनी महंगी हैं उतनी ही ज्यादा उसकी कीमत देनी होगी। भ्रगर ईश्वर को चाहते हो, हमेशा का आनन्द भर सुख जआाहते हो तो जान की बाजी लगानी पड़गी। कीमत क्या हैं ? पपने अरभानों (इच्छाश्रों) का खून कर दो, इच्छा रहित हो जाओ और अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर दो । इसका भेद संतों के सत्संग में भिलेगा।

जहाँ आपस में साँहब्बत से रह रहे हो वहीं सतयुग हैं । जहाँ एक दुसरे से differ करते हो (भेद भाव हैं) वहीं कलियुग हैं । दैवी जीवन वहाँ हैं जहाँ सबके साथ Cooperate (सहयोग) करते हो ।

संत वाणी

(सिकन्द्राबाद, दि० ३ जून १६६८)

गुरु से रूठते कभी नहीं । गुरु का कोई काम दयालुता से खाली नहीं होता ।

मन या अन्तःकरण का घाट माया का घाट है । यहाँ पर बैठे हुए अभ्यासी को आध्यात्म की बात लाख समझाओ, असर नहीं होता और जब घाट बदल कर छठे चक्र पर बैठक बनाता है तब हर बात समझ में आती है। वही कार्यवाही परमार्थ में दाखिल हैं जिससे इस (काल) देश को छोड़कर निर्मल चेतन (दयाल) देश में जाता है। जिस तरह झाड़ू लगाना जरूरी है वर्ना कूड़ा इकट्ठा हो जावेगा उसी तरह देश सुधार, देश उन्नति, परोपकार वगैरा, जितने काम हैं सब के लिए दिल ही में एतदाल (सन्तुलन) क़ायम रखना जरूरी है मगर उनसे परमार्थ यानी निज-परम- अर्थ हासिल नहीं होता ।

सन्तों की परमार्थ की कार्यवाही और अभ्यास किये जाते हैं तीसरे तिल से, उससे ऊँचे नहीं, क्योंकि तीसरे तिल से नीचे पिण्ड में मन और माया प्रधान है और सुरत दबी हुई है । जहाँ से सुरत ग़ालिब होने (मन पर काबू पाने) लगती है वहाँ से सन्तों का अभ्यास शुरू होता है और वह नेत्र-मार्ग से है । सन्त दोनों नेत्रों में से दोनों धारों को खेंचने और उलटाने का अभ्यास कराते हैं । सुरत के जागने और तीसरे तिल पर उसका समूह बनत जाने से उसमें साक्षी होकर देखने और कार्यवाही करने की काबिलियत (योग्यता) आवेगी और बिना साक्षी हुए न तो विकार घट सकते हैं न सच्ची शरण ही ली जा सकती है। जैसे साक्षी होकर देखो कि फलाँ (अमुक) काम और कार्यवाही जो मुझ से बन पड़ी है वह विकारयुक्त है, वह मन करा रहा है, तभी तो उससे नफ़रत पैदा होगी और उसको छोड़ने के इरादे और यत्न करेगा। अगर साक्षी होकर नहीं देखेगा तो इतना होश ही कैसे आयेगा ?

परमार्थ में कामयाबी हासिल करने के लिए ज़रिये ।

(नवम्बर १९६६ में गोरखपुर में लिखाया गया)

परमार्थ यानी अपनी आत्मा का अनुभव करने के लिए या ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए या हमेशा का सुख हासिल करने, दुख से निवृत्ति हासिल करने के लिए दो चीजों की सख्त जरूरत है। जितने काम हम करते हैं या तो दिल (मन) की ख्वाहिश के मुताबिक या बुद्धि के सुझाव से करते हैं । इन दोनों का शुद्ध होना जरूरी है । जब तक ज़िन्दगी के ये दोनों पहिये सही तौर पर और साथ-साथ नहीं चलेंगे जिन्दगी का सफ़र या तो मुश्किल से या बड़ी मुद्त में तय होगा । और यह भी मुमकिन है कि जन्मों चक्कर खाते रहें और कामयावी हासिल न हो ।

शुद्ध मन से मतलब यह है कि उसको ईब्वर से लगाव हो और तलाश करके उसको सतगुरु मिल गया हो और उससे उसको प्रीति हो गई हो । शुद्ध बुद्धि से यह मतलब है कि बुद्धि में दुनियाँ की नाशवानता देखकर सच्चाई यानी हमेशा रहने वाली चीज़ की तलाश हो और दुनियाँ से उपराम हो गया हो । जब तक यह दोनों चीज़ें न होंगी इस दुनियाँ के प्रपंच से छूटना नामुमकिन है । अगर हमको सच्चा गुरु मिल जाय और हमें उसमें सच्चा विश्वास हो जाय और हम उसके आदेशों पर चलें तो अपने लक्ष्य पर पहुँच जावेंगे। अगर सच्चा गुरु तो मिल जाय मगर उसमें सच्चा विश्वास और प्रेम न हो और कर्म और रहनी सहनी उसके कहने के मुताबिक़ न' बनावें तो कामयाबी नामुमकिन सी हो जाती है, और अगर हम उस शुद्ध बुद्धि से दुनियाँ की नाशवानता पर ध्यान देकर, जो चीज़ें नाशवान हैं और जिनमें सुख सिर्फ जाहिरदारी है और दुख भरा पड़ा है, छाँट-छाँट कर सच्चाई की तरफ नहीं चलते हैं तो भी कामबावी नामुमकिन हो जाती है, क्योंकि इस रास्ते में हर क़दम पर बड़े भयानक (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि) जानवर हर समय मुह खोले निगलने को तैयार हैं। इसलिए रास्ते के जानने वाले (गुरु) की ज़रूरत है जो हमारी हिफ़ाज़त करता जाय वरना

मुमकिन हैं कि किसी चक्कर में फेंसकर यह जन्म व्यर्थ कर दें । इसलिए जो मुतलाशी (जिज्ञासु) इस बात के हैं कि उनको हमेशा हमेशा के दुःख से निवृत्ति हो जाय और हमेशा का सुख मिले उनको चाहिये कि जब तक सच्चा गुरु न मिले तब तक नाशवान चीज़ों से तबियत हटाकर सच्चाई जो हमेशा रहने वाली चीज़ हैं, की तरफ चलें और मन से उनकी ख़्वाहिशों को आहिस्ता आहिस्ता छोड़ते जावें। जिन चीजों को जिन्दगी में बिना रखे गुजारा न हो उनको साथ रखें पर उनमें भी अन्दर से न फँसें और जिन चीज़ों से वास्ता नहीं हो या गैर जुरूरी सी हैं, उनसे मन हटा ले और सच्चे गुरु की तलाश में रहे । जब सच्चा गुरु मिल जाय तब पूर्ण रूप से अपने आपको उसके अधीन कर दे और जैसा वह कहे वैसा ही करे। और अगर किसी को सच्चा गुरु मिल गया हैं तो उसके कहने के मुताबिक़ और शुद्ध बुद्धि से सोच विचार कर जो रास्ता वह बत।वे उस पर चलने की कोशिश करे। अगर किसी को गुरु में विश्वास भी हैं और बुद्धि ने बगैर सोच विचार करे उसको अपनाया हैं और पूरा कबूल नहीं किया हैं तो गुरु के बतलाये हुये रास्ते पर पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ नहां चलेगा । जब तक दिल उसमें शामिल नहीं होंगा, उसे कामयाबी नहीं होगी और आख़िर को रास्ते से भटक जायगा और छोड़ देगा ।

इसलिए हर जिज्ञासु को अपनी कामयाबी के लिए ज़रूरी हैं कि सच्चे गुरु की शरण ले और विवेक से काम ले। जितनी जितनी तरक्की इन दोनों बातों में करता जावेगा। उतना ही रास्ता उसका जल्दी तय होता जायगा और दो तीन जन्मों में हमेशा हमेशा के लिए इस आवागमन के प्रपंच से छूट जायगा । बल्कि यह भी ज़रूरी नहीं हैं कि तीन चार जन्म ही लगें। यह रास्ते की मुद्दत उसके शौक़ पर मुनहसिर हैं।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

सन्त वाणी

सिकन्द्राबाद (१ जून १६६८)

हमारा तरीका अभ्यास का नहीं बल्कि प्रेम का है । हमारे यहाँ त्याग भी नहीं कराया जाता, प्रेम को अपनाया जाता है ।

तीन अवगुण शरीर में हैं । (१) सिर यानी बुद्धि (२) मन यानी दिल । (३) हाथ । सिर में ख्याल (गुरु का) हो, मन में (उसके प्रति) खटक या तड़प हो और हाथों से यत्न (सेवा) हो । और तीनों एक साथ हों । बगैर इसके इश्क़ (प्रेम) मुकम्मिल (-पूर्ण) नहीं होता ।

इश्क़-मजाज़ी (सांसारिक वासना युक्त प्रेम) में आशिक (प्रेमी) अपनी खूबसूरत बीवी (पत्नी) की परवाह नहीं करता, छोड़ जाता है, घर वालों और सभी की लाहन-ताहन (लांछन) की परवाह नहीं करता, किसी रुकावट से नहीं रुकता और सभी को वालायैताक़ (एक ओर) रख कर और रुपया-पैसा आबरू, गैरत (स्वाभिमान) सभी को कुर्बान (न्यौछावर) करके अपनी माशूक़ा- (प्रियतमा) से हमागोश (आलंगिन) होता है। ऐसा इश्क (प्रेम) हो अपने गुरुदेव से) । इश्के-मजाज़ी (वासनायुकत प्रेम) और इइक़-हक़ीकी (सच्चे मालिक परमात्मा या गुरु से प्रेम) में कोई फर्क नहीं, सिर्फ ख्याल का मोड़ना है, नजरों का ही बदलना है । शिष्य तीन तरह के होते हैं : (१) गुरु की रहनी सहनी को निगाह में रंखते हैं, कोई काम दिखावे का नहीं करते बल्कि गुरु की ज़रूरत का कुल सामान मुहैय्या (उपलब्ध) करके अलग हो बैठते हैं । उनको बतलाना नहीं पड़ता । वह गुरु के हर ख्याल को भाँपते हैं और उसी के मुताबिक़ कारवन्द (काम करना) होते हैं । यह उत्तम शिष्य हैं ।

(२) वे जिज्ञासु जो खुद Read (आभास) नहीं करते बल्कि उनको कहना पड़ता है । वे कहने के मुताबिक चलते हैं । यह शिष्य मध्यम हैं । (३) वे जिज्ञासु जिनको लाख कहा जाय, सुनते भी नहीं वल्कि इस कान सुनकर उस कान से निकाल देते हैं। ऐसे शिष्य निकृष्ट श्रेणी के कहलाते हैं ।

पहला सबक़ आत्मा की तरबियत (शुद्धि) कुछ कष्ट सहकर प्राप्त होती हैं। ऐसी रहनी-सहनी जो हमारे अन्तर की सफाई करती है, और बुरे कर्मों से छुटकारा दिलाती है हमें बार-बार ईश्वरोन्मुख करती हैं। इस तरह अभ्यासी जब गुरु की तरफ़ प्रेम से आकृष्ट होता है तो उसे संसार की तरफ़ से दुख तकलीफें मिलती हैं ।

दूसरा सबक :-गुरु से प्रेम करने से गुरु का प्रेम मिलता है और गुरु अपनी दयालुता से जिज्ञासु की तरबियत (आन्तरिक उन्नति) करता है । जब अन्तर में कुछ चढ़ाई होने लगती है तो अहंकार होने लगता है और जब तक खुदी (अहंकार) ख़तम नहीं हो लेता तब तक दीन (आध्यात्म लाभ) नहीं मिल सकता । दीन' बनता है राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ संतोषी) होने से । जब तक 'दीन' नहीं बनता ईश्वर की दयालुता का पात्र नही होता।

तीसरा सबक :--जिज्ञासु की अपनी खुदी (सात्विक अहंकार) सिखाती हैं। रूह इस खुदी और ग़रूर को मिटा कर उसका दीन बना देती ।

\+ x x x

स्वादिष्ट भोजन (लजीज़ खाने) का मतलब है. कि जिस्मानी (शारीरिक) और रूहानी (आत्मिक) ताक़त बरुशे । सात्विकता प्रदान करे । खाना इस तरह प्रभु के ध्यान में खाबे कि यह याद न रहे कि आज क्या खाया था।

सत्संग के असली लाभ

जिस तरह दुनियाँ के कामों को बिना सोचे-समझे, बिना ढंग और शहूर से किए हुए कामयाबी नहीं होती, इसी तरह सतसंग में शरीक (सम्मिलित) होकर बिना सतसंग के उसूलों (सिद्धान्तों) को समझे हुए, बिना सलीके और ढंग से काम किये, सतसंगी का असली फ़ायदा नहीं हो सकता । बहुत से लोगों का ख्याल है कि उनका काम सतसंग में शामिल हो जाना और शामिल होकर बराबर सतसंग करना ही है और कुछ नहीं, और इतने से ही सब काम हो जायेगा। इससे मालूम होता है कि उन्हें सतसंग का उसूल ही नहीं मालूम और न उन्होंने इसे ठीक से समझा है। सतसंग में शामिल होने की वजह यह है कि उन्होंने अब सतसंग को क़बूल कर लिया है और उस पर चलने के लिए तैयार हैं। चलने ही से रास्ता कट सकता है और मंजिल पर पहुँचा जा सकता है और उसके फल की आशा की- जा सकती है। जब तक अभ्यासी सतसंग में शामिल होकर उसके उसूलो को समझ कर अभ्यास को बक़ायदे शुरू न करेगा असली मतलब से दूर रहेगा। इसमें तो शक नहीं जैसे जल के भीतर का पत्थर जल के बाहर के पत्थरों से शीतल रहता है ऐसे ही संतसंग के अन्दर पड़ा हुआ जीव दुनियाँ की तपन से बहुत कुछ बचा रहता है। लेकिन सतसंग में शामिल होने का मतलब यही नही सी ग़रज के लिए क़ायम किया गया । सतसंग का मक़सद यह है कि हृदय की सफ़ाई होकर अभ्यासी दुरुस्ती से अभ्यास कर सके जिससे रफ्ता-रफ्ता जीव के दिल में संसार की जानिब से .उदासीनता पैदा होकर सच्चे मालिक के चरणों में सच्चा अनुराग पैदा हो और जीते जी उद्धार देख कर अपने भाग्य को सराहे और बुलावा आने पर हँसी खुशी यहाँ से रवाना होकर मालिक के चरणों में समा जाये।

सतसंग को असली परमार्थी शिक्षा देने का विद्यालय कहा जाता हैं। जो प्रेमी भाई चेतकर सतसंग करते हैं और उसकी ग़रज़ को सामने रखते हैं वे सतसंग को सलीके और ढंग से करते हैं और सतसंग से असली लाभ उठाते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे इस फ़ायदे से वंचित रहते हैं ।

चेतकर सतसंग करने से चार बातें सच्चे परमार्थी के अन्दर प्रगट होनी चाहिये :-

(१) सच्चा या पूरा यक़ीन परमात्मा की हस्ती का, उसके हर जगह मौजूद होने का और गहरा शौक़ उसके दर्शन का पैदा होना चाहिये ।

. (२) संसार के भोग विलास के सामान होते हुये भी और इस्तेमाल में आते हुए भी उसको सच्ची खुशी न मिले बल्कि यही चाहता रहे कि दुनियाँ से जल्दी छूट कर वह अपने परमात्मा सच्चे चरणों में पहूँचे। ।

(३) यह ख्याल बराबर उठता रहे कि हम से ऐसे काम होते रहें कि जिससे हमसे परमात्मा खुश रहे और अपनी मुहब्बत का दान दे और कोई काम ऐसा न हो जिससे उसकी दूरी और नाराजगी हो ।

(४) उसको ज़ाहिरी और अन्दरूनी (बाहरी और आन्तरिक) सतसंग मिले जिससे उसको पूरा निश्चय हो जाय कि कोई गुप्त शक्ति हर वक्त मेरी देख-भाल और सम्भाल कर रही है।

जिन व्यक्तियों को यह चार बातें हासिल हो जाती हैं वे ही सतसंग की क़ीमत समझ सकते हैं और वे ही परमात्मा के प्रेम के अधिकारी हो सकते हैं और मोक्ष पा सकते हैं ।

सवाल हो सकता है कि जो प्रेमी सतसंग के उसूलों कों नहीं समझता और शहूर और सलीके से नहीं बरतता और जैसा चाहिये उस तरीके से नहीं बरतता लेकिन सतसंग बराबर करता रहता है तो क्या उसको फ़ायदा नहीं होगा ? जवाब इसका यही है कि फ़ायदा तो होगा जेसा ऊपर लिखा जा चुका है लेकिन उस वक्त भूंख से बेताब था पर खाना आते ही सो गया। खाने का सब सामान

सामने धरा हैं पर वह बेहोश सो रहा हैं । न उसको अपनी भूख की सुधि हैं और न खाने के सामान की ख़बर । जब कंभी उसकी नींद उचटेगी और होश आवेगा यानी निकृष्ट कर्मों कां असर दूर होकर उसे आप से आप होश आवेगा तभी वह सतसंग के नियमों की क़दर करेगा और अपनी भूख मिटावेगा । इस समंय तो वह सो रहा हैं । दुनियाँ की तपन से बचा हुआ वो ज़रूर हैं लेंकिनं मन का घाट नहीं बदला और संतसंग के असली फ़ायदे से वंचित रहा ।

वैराग्य

वैराग्य क्यों पेदा होता है ? जब हम कोई काम करते हैं या किसी चीज़ को भोगते हैं तो हमारा ध्यान उसके अच्छे नतीजे को तरफ़ रहता है । जैसा हम चाहते हैं वैसा नतीजा नहीं मिलता तब हमें दुख होता है । उस दुख के डर से हम उस काम को न करें या उस चीज को न भोग तो यह डर से पैदा हुआ वैराग्य है । हम देखते हैं कि यह तो दुख का कारण है इसलिए उस काम या भोग से हमें वैराग्य हो जाता है । शादी हुई, बड़ी खुशी मालूम होती है कि अब तो हमारे सुख के दिन बनेंगे, अब तो हमें जीवन साथी मिल गया । लेकिन जब गृहस्थी के झटके लगते हैं तो मन में वह खुशी नहीं रहती जिस को लेकर शादी की थी ।

लड़कियाँ व्याह का बड़ा चाव करती हैं कि हमारी इच्छायें पूरी होंगी । जहाँ ससुराल में आयीं और अगर वहाँ मुसीवतें सामने आयीं तो दुख होने लगा । शादी से ऊबने लगीं । शादी के वाद अगर दुख मिला तो दुनियाँ से वैराग होने लगा। शादी से पहले जो खुशी पैदा हुई थी वह असल में एक ख्याल था, खुशी नहीं थी । इस तरह का जो वैराग होता है वह ख्याल के द्वारा होता है । यांनी, किसी चीज़ को सोच कर वहाँ से मन हट जाना । पहला वैराग डर से या भय से पैदा हुआ था, दूसरा सोचने से पेदा होता है । वह विवेक का वैराग है ।

ईश्वर को प्यार करते करते जब उससे सच्चा प्यार हो जाता है, उसकी नज़दीकी के प्यार में जो आनन्द है वह दुनियाँ की किसी चीज़ में नहीं है। इसलिए उस प्यार का आकर्षण धीरे-धीरे दुनियाँ और उसकी सब चीज़ों का मन से त्याग करा देता है।

पहला वेराग डर से हुआ, दूसरा विवेक से और तीसरा वैराग साधना से हुआ । एक चौथा वैराग और है । आपने सपने में देखा कि शेर आ रहा है और उसके डर से आप भागे जा रहे हैं । सामने से साँप आ गया। बस, कैसे बचा जाय ? उस वक्त मन में कितनी घवराहट होती है । जब

आँख खुलती हैं तो उसी डर से आप कुछ देर तो काँपते हैं फिर जब नींद से पूरी तरह होश जाता है तो उसे भूल जाते हैं--यह तो सपना था। सपने का ज्ञान हो जाने पर सत्य को, असलियत को जान जाते हैं । कोई आदमी रेगिस्तान में जाता है और उसे प्यास लगी हो तो वह यह देखता है कि दूर रेत में पानी बह रहा है। प्यास के कारण वह लपक कर वहाँ जाता है तो देखता है कि यहाँ नहीं और थोड़ी दूर पर गंगा जी बह रही हैं। आगे जाता है तो देखता है कि पानी नहीं यह तो रेत है, गंगा जी तो आगे बह रही हैं। चलते चलते उसे यही लगता रहता है कि यहाँ नहीं और आगे, गंगा जी तो और आगे बह रही हैं, यह तो सब रेत ही रेत है । जितना आगे बढ़ता जाता है पानी उतना ही आगे नज़र आता है । इसी मृगतृष्णा में वह अपनी जान दे देता है।

इसी तरह से आदमी दुनियाँ की चीज़ों को पकड़ता है । जिस चीज़ या भोग में आनन्द की आस लगाकर पकड़ता है और उसमें उसे आनन्द नहीं मिलता तब दूसरी दूसरी चीज़ों को पकड़ता है । जब उन्हें भी झूठी पाता है तो उनके आगे जो और चीज़ें हैं उन्हें प्राप्त करने की कोशिश करता है, परन्तु जब देखता है कि जिस स्थायी आनन्द को वह चाहता है वह तो इनमें नहीं हैं, यह तो सब नाशवान हैं, तो उसे ख्याल पैदा होता है कि जिस आनन्द की उसे तलाश है वह दुनियाँ की चीज़ों में नहीं है । जिसे यह ख्याल पैदा हो गया उसके मन में तो दुनियाँ से वैराग पैदा हो जाता है और जिसको यह ख्याल पैदा नहीं होता वह दुनियाँ की वस्तुओं में, मृगतृष्णा के आनन्द में अपना अमूल्य जीवन गँवा बैठता है । जब यह हक़ीकत खुल जाती है यानी यह ज्ञान हो जाता है कि दुनियाँ की चीजों में वह आनन्द नहीं है जिस की मुझे तलाश है तो फिर मनुष्य उन चीज़ों में नहीं फसता । इस तरह का वैराग ज्ञान से पैदा होता है ।

स्वामी विवेकानन्द जी एक बार कहीं जा रहे थे। बहुत प्यास लग रही थी । शहर के किनारे ही थोड़ी दूर पर रेत का एक टीला देखा । ऐसा लगा कि यह तो बड़ा सुहावना उपवन है, यह रहा, बस पास

ही तो हैं । जब वहाँ पहुंचे और देखा तो वैसा कुछ नहीं था । प्यास बहुत लगी हुई थी तो एक बार उन्होंने फिर उस तरफ़ देखा, कुछ दूर पर फिर वसा ही दृश्य दिखाई दिया, लेकिन था कुछ नहीं । फिर उन्होंने उधर से अपना ख्याल ही हटा लिया । जान गये कि यंह ख्याल ही है ।

ये जो दुनियाँ में दीखता है इसमें नफ़रत और, मौहब्बत धोखा है । ज्ञान होने पर असलियत खुल जाती है। इस हालत में अ्गरचे (यद्यपि) मनुष्य सेबको देख रेहा है लेकिन जानता हैं कि इसमें किसी भी चीज़ में असली आनन्द नहीं है । आनन्द तो वो है जो उसने अपने अन्तर में प्राप्त कर लिया है। नफ़रत और मौहब्बत से हटकर पहले ज्ञान के द्वारा यह अम्यास करना कि यह दुनिया दीखती कुछ है वास्तव में है वैसी नहीं । अगर ऐसा अभ्यास पक्का हो गया है, तो यह वेदान्त है । जिसने दुनियाँ को एक सराय समझ लिया है, सब जगह सराय का तमाशा देख रहा है और यह निश्चय हो गया है कि यह सब तो स्वप्न है जो हम देख रहे हैं, वही वेदान्ती है । आत्मा जब तक मन के साथ रहती है तब तक स्वप्न की अवस्था जैसी रहती है, दुनियाँ के अन्दर सभी जगह सराय का सा आनन्द आता है, लेकिन जब वह मन से न्यारी हो जाती है, उसे अपना होश हो जाता है, यानी वह जागृत हो जाती है तब यह समझती है कि यह सब तो धोखा है, असली आनन्द तो सिर्फ़ ईश्वर में है । फिर ऐसा आदमी जिसकी आत्मा जागृत हो गई हो, ईश्वर में अपनी तबियत लगा लेता है और स्वतः आनन्द भोगता है । बाकी दुनियाँ उसके लिए सराय ही हुई । यह ज्ञान के द्वारा वैराग हुआ ।

गोरखपुर में बैनर्जी साहब (परमसन्त श्री अक्षय कुमार बनर्जी महाराज) से भेंट हुई । आप शिव भगवान के उपासक थे। आप कहते थे कि माँ और शिव भगवान ([प्रकृति और पुरुष) विलास करते हैं तब ऐसा लगता है कि सब ओर आनन्द ही आनन्द फल रहा है , उन्होंने एक दफ़ा बतलाया कि दो रूप हैं शिव भगवान के । कभी तो वे सती के साथ विलास करते हैं और बाल बच्चों का खेल

हो रहा है, और कभी वे इमशान में धूनी रमा कर पूजा करते हैं। भक्त इस सब को माया का खेल समझता है। माँ ही अपना खेल खेल रही है , । भक्त उसमें खुश रहते हैं लेकिन जब वह खेल ही खेल है उनके लिए तो वे उसमें फँसते भी नहीं । उसमें आनन्द भी हासिल करते हैं, ईश्वर का अनुभव भी हासिल करते हैं और माया का जो खेल है उसको भी देख रहे हैं। उनके लिए हर जगह खुशी ही खुशी है। वैराग में तो कुछ दुख भी है, यहां तो कुछ भी नहीं है, यहां तो हर जगह खेल हो रहा है । ऐसा भक्त तो दुनियां का तमाशा देख कर यह सोचता है कि एक सिनेमा हो रहा है । खेलने वाले खेल रहे हैं । इस दुनियाँ का जो पर्दा है उसके ऊपर खेल हो रहा है और शिव भगवान माँ के साथ खेल खेल रहे हैं, इसमें कुछ सार नहीं है, इसलिये उसमें फँसते नहीं हैं लेकिन उस खेल का आनन्द भोगते । यह सबसे ऊंचा वैराग है ।

तो पहला वैराग हुआ डर से, चीजों को भोगकर जो दुख होता है उससे डर कर वैराग हो जाता । एसे बहुत से लोग हैं जो जब यह देखते हैं कि बाल बच्चे हैं, इनका पालन पोषण करना है, घर वालों की परवरिश (पालन) करना है, इसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी वो घर-द्वार छोड़ कर जंगल में चले जाते हैं । न बाल बच्चे होंगे और न झंझट होगा । यहु डर के 'कारण वैराग है , दूसरे हर चीज़ को देखते हैं, मनन करते हैं कि इसको हम" भोगेंगे तो इसमें दुःख-तकलीफ मिलेंगे क्योंकि इनका नतीजा दुख है, यह चीज़ें नाशवान हैं । इसलिए वे ऐसा सोचकर उस भोग से, उस चीज़ से दूर रहते हैं । यह 'विवेक' का वैराग है । तीसरा, जो साधना करके वैराग होता है वह उत्तम है । वे देख लेते हैं कि उन्होंने जिस वस्तु को भोगा उसी को निस्सार पाया। तजुर्बा करके अभ्यास करते जाते हैं । तरह तरह की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोगते जाते हैं और जब उनमें सार (स्थायी आनन्द) नहीं पाते तो उनसे अपने आप को बचाते रहते हैं। यह साधना से वैराग है । यही वैराग जब पक्का हो जाता है तो आगे जाकर ईश्वर तक पहुँच जाते हैं और परमानन्द को प्राप्त कर लेते हैं । दुनियाँ में सत जगह माँ का रूप देखते हैं । उनके लिये यहाँ न दुख है न सुख है। आनन्द

ही आनन्द भोगते हैं और इसके साथ ही साथ अपने आप को सबसे निर्लेप रखते हुए ईश्वर के प्रेम में आनन्दित रहते हैं। यहाँ पर वेराग तो है लेकिन साधना के द्वारा है।

अगर अनुराग के कोई वैराग सही नहीं होता। विवेक पहली चीज़ है। उसके बाद दूसरी चीज़ है प्रेम। इसी प्रेम को हासिल करने के लिये जितनी रुकावटे रास्ते में आये उन्हें तक से दूर करते जाओ। यह वैराग तक का हुआ। यह वेदान्त का मार्ग है। ईश्वर का प्रेम गुरु-कृपा से हासिल करना और उस प्रेम में मस्त रहना, और जो चीज़ उससे दूर रखे, उसको छोड़ देना, यह वैराग प्रेम से हुआ। प्रेम पहले, वैराग बाद में। दोनों में इतना ही फ़र्क है। वेदान्त में अभ्यास करके बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। हरेक मनुष्य वेदान्त पर नहीं चल सकता। इसमें सब चीज़ों को आहिस्ता-आहिस्ता त्याग किया जाता है। त्याग करने में दुख होता है इस लिए हर मनुष्य उस पर नहीं चल पाता। सन्तमत में, आपके इस सत्संग में (गुरु रूप) परमात्मा का प्रेम हासिल करके दुनियाँ की चीज़ें खुशी और आसानी से दूर हो जाती हैं, यानी उनसे उपराम हो जाता है। उन्हें भोगता तो है परन्तु उनमे लगाव नहीं रहता। इससे उसे दुःख नहीं उठाना पड़ता। आपको परमात्मा या गुरु से प्रेम हो गया है तो आप उसी प्रेम की शराब में मस्त मदहोश रहते है। ईश्वर प्रेम का नशा ऐसा है कि आप यह चाहते है कि यह चौबीस घंटे बना रहे। यह है प्रेम से वैराग यही सबसे सरल और छोटा रास्ता है, आत्म ज्ञान का, ईश्वर प्राप्ति का।

ईश्वर आप सब को अपना सच्चा प्रेम दे।

संचार को मन से छोड़ने ये संसार का स्वामी बन जाता हैं ।

कुछ लोगों का यह विचार है कि भगवान बुद्ध ने चूंकि आत्मा-परमात्मा का ज़िक्र नहीं किया है अतः वे नास्तिक थे ।

यह बड़ी भूल है । आत्मा का साक्षात्कार या ईश्वर की प्राप्ति दोनों एक ही बात हैं । किन्तु इसके लिये किसी विशेष महापुरुष के द्वारा काल और परिस्थित के अनुसार जो भी शिक्षा निश्चित की जाती है , कालान्तर में वह बात साधारण हो जाती है, और मनुष्य की रुचि उस ओर से हट जाती है । इस कारण, दूसरे महापुरुष जो बाद में आते हैं, उसी शिक्षा को दूसरी प्रकार से प्रगंट करते हैं, और जब वह शिक्षा भी समय के साथ साधारण हो जाती है, ओर जन-साधारण की रुचि उससे हट जाती है, तो और दूसरे महापुरुष आकर उस शिक्षा को अपने ढंग से ज़ाहिर करते हैं, जिससे जनसाधारण की रुचि उधर को बढ़े । सभी की शिक्षा का आशय यही है कि मनुष्य, आत्म-तत्व या परम-सत्य की ओर चले, चाहे शब्दों का ऊपरी रूप भिन्न-भिन्न ही क्यों न हो, किन्तु असली तत्व सबका एक ही होता है । चाहे वे संत हों, चाहे ऋषि हों, चाहे अवतारी पुरुष हों हरेक ने एक दुसरे का समर्थन किया है, खण्डन या परिवर्तन नहीं किया है । जो अनुभवी पुरुष हैं वे उसको समझते हैं, और असलियत पर जा रखते हुए सब में सचाई देखते हैं । जो ऊपरी निगाह से देखते हैं वे उसमें भेद या अन्तर देखते हैं, और किसी को अच्छा और किसी को बुरा कहते हैं । '

भगवान व्यास के षट-सम्पत्ति साधन वही हैं जो भगवान पातञ्जलि ने यम नियम के रूप में ज़ाहिर किये हैं, और सूफियों के साधन यम नियम भी वही हैं । बुद्ध भगवान के पंचशील (आठों-साधन) सत को ग्रहण करना, आदि, भी ऊपर के साधनों का दूसरा रूप है । कोई नये साधन नहीं हैं । उन्होंने ईश्वर प्राप्ति का एक जाहिर रूप जो - मौजूद है और जो आसानी से प्रयोग में आ सके, बताया है । उन्होंने आत्मा और ईश्वर का नाम न लेकर एक पूर्ण आनन्द की अवस्था -के रूप में

विवेचन किया है जिसको हर आदमी आसानी से समझ सके। और वास्तव में आत्म तत्व और आनन्द में कोई भेद नहीं है । दुनियाँ में आकर हर मनुष्य जो ज़रा भी समझ रखता है, चाहता है कि यत्न करके जो चीज़ अच्छी लगती है, हासिल करे और सुख भोगे । जो चीज़ दुख या तकलीफ़ देती है और बुरी लगती है उससे छूटकारा पाये । यह इच्छा हर एक में शुरू से ही मौजूद रहती है। इस इच्छा को पूरा करने के लिए यत्न करना पड़ता है, इसी को कर्म कहते हैं । इसमें अगर इच्छा पूरी हो जाती है तो सूख होता है भरोर इच्छा पूरी नहीं होती तो दुख मिलता है।। एक इच्छा को पूरा करने में वहुत सी बाधायें पैदा होती हैं, उसको दूर करने के लिए और ज्यादा यत्न करना पड़ता है और यत्न या कर्म दुंखरूप है । इसी प्रकारएक इच्छा के बाद दूसरी फिर तीसरी निरंतर पैदा होती जाती है, और सुख प्राप्त करने के बदले दुख के समुद्र में डूब जाता है । मन हा मन यह सोचता है कि कौन सा यत्न किया जाना चाहिए कि दुख से छुटकारा मिले, और सुख मिले । तब उसके अंदर विचार पैदा होता है कि अगर मुझमे शक्ति अधिक हो जाए या धन मिल जाए या मुझे और लोगों की सहायता मिल जाये, तो मैं अपने इरादे में सफल हो सकूँगा और दुःख से निवृत्ति मिल जाएगी और और यह सोच कर इन चीजों के हासिल करने में लग जाता है । धन कमाता है, शारीरिक शक्ति बढाता है लोगों को अपने जैसे विचारों वाला बनाता है, ऊँची ऊँची पदवी पाने कि यत्न करता है । इन सबको पाने के लिए भी बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता है । यही सब दुःख का कारण हो जाता है । इन सब के मिल जाने पर भी सुख नहीं हैं । यही आरत है , शास्त्रों को भाषा में इसी को आर्त कहते हैं, जब धन, सम्पत्ति मान -बड़ाई प्राप्त हो जाने पर सुख नहीं मिलता, और दुख बढ जाता हूँ, तब वह सोचता है कि इतने पर भी सुख नहीं मिलता, इसका क्या कारण हें ? सोचते-सोचते वह इस परिणाम पर पहुँचता हें कि जितना कुछ मैंने प्राप्त किया है वह दुसरों को दुख कष्ट देकर प्राप्त किया है, यदि मैं दूसरों को कष्ट न देता तो मुझ को भी दुख कष्ट न होता । इसलिए वह धर्म कि तरफ को लौटता है । सबको सुख पहूँचाता है, धर्म विरुद्ध कुछ काम नहीं करता । लेकिन भूल यह

हो जाती है कि बजाय उन सब चीजों को धर्म की ओर ले जाने के धर्म को इन सब चीज़ों के हासिल करने का साधन बना लेता है।

चाहिए तो यह था कि सब कर्म करता धर्म के लिए, औरों को सुख पहुंचाने के लिए । लेकिन अब वह इसके प्रतिकूल करने लगता है । धर्म पर इसलिए चलता है कि संसारी चीजे प्राप्त हों । चाहिये तो था कि धन सम्पत्ति धर्म के लिए कमाये, रुपया कमायें उससे दूसरों को सुख पहुँचायें, धर्म के काम करे, किन्तु करने लगा उसके ख़िलाफ़ कि धन कमाकर एश्वर्य भोगें । ऐसे ही आदमियों को राजस कहा गया है। रावण भी धर्भ पर चला, उसने भी विष्णु भगवान की पूजा की । उसने भी बड़ी शक्ति प्राप्ति की, बड़े-बड़े काम किए, जिससे उसको संसारी सुख मिले संसारी इच्छायें पूरी हों, लेकिन नतीजा इसके ख़िलाफ़ हुआ । धर्म पर चलते हुए भी उसकी ज़िन्दगों सुख की न हुई, इसी तरह बहुत से राजा महाराजा हुए हैं ।

यही ईश्वर का नियम है कि सब कुछ हासिल होने पर भी सुख नहीं मिलता । जिस चीज़ को हम प्यार करते हैं, उसको हासिल करने को हम धर्म का सहारा लेते हैं । चाहिये तो यह था कि धर्म को हासिल करने के लिए अपने प्रेम को उसमें लगा दें, करते हैं उल्टा । इससे दुख की निवृत्ति के बदले दिन-दिन दुख बढ़ता जाता है । अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सम्पत्ति भी जमा की, पर उससे भी कुछ काम नहीं बना। धर्म पर भी चला परन्तु उससे भी काम नहीं हुआ, दुख बढ़ता ही गया । खूब सोच विचार करने पर उसकी समझ में आता है कि मैंने ख्वाहिशें खत्म करने के लिए ख्वाहिश का सहारा लिया । इसी से सारे दुख हैं । अब वह दूसरे रास्ते पर आता है, उसके भाव बदलते हैं, उसका ख़याल बदलता है, वह समझने लगता है कि दुख की जड़ असल में ख्वाहिश (इच्छाओ, कामनाओं) ही में है । जब तक कामनायें हैं, दुख रहेगा जितनी यह बढ़ती जायेंगी उतना ही दुख बढ़ता जायेगा । इसलिए वह दूसरा रास्ता पकड़ता है। बजाय ख्वाहिशात बढ़ाने के

- ख्वाहिशें घटाता है, और वजाय दुख के सुख अनुभव करता है । जितनी ही ख्वाहिशात कंम करता जाता है, सुख पाता जाता है ।

अब उसे अनुभव होने लगता है कि यही सच्चा रास्ता है । यही देवताओं का रास्ता है । वह अपनी बुद्धि का शोधन करता है । बुद्धि से सांसारिक विचारों को हंटाता है, और सुख की भावना पैदा करता है, और सच्चे सुख का विचार करता है । मन का शोधन करता है । दुनियाँ को ख्यालात धीरे-धीरे मिटाने लगता है और इसकी जगह सच्चे ख्याल और सच्चाई का ख्याल करता है । दृष्टि को शुद्ध करता है, बजाय दुनियाँ की चीज़ों में फँसाने के उनको सच्चा सुख पाने की तलांश में लगाता है। अपनी वाणी को शुद्ध करता है । बजाय दुनियाँ की बातचीत करने के सत्य की बातें करता है । अपनी श्रवण शक्ति को शुद्ध करता है । बजाय दुनियाँ की बातें और दुनियाँ की बुराई सुनने के वह सच्चाई की ओर दूसरों की भलाई की बातें सुनता है । बुरे कर्म जिनसे दूसरों को दुख पहुँचे, छोड़ता है और अपनी इन्द्रियों से शुभ कर्म करता है। मन से शुद्ध विचार करता है। अलावा ज्ञान चक्षु के उसकी मन बुद्धि इन्द्रियाँ और कर्म शुद्ध हो जाते हैं। यही धर्म पर चलना है । इस अवस्था के प्राप्त होने पर उसको सबसे प्यार होने लगता है, यही मोक्ष है, निर्वाण पद है, इसी को विश्व प्रेम कहते हैं ।

यह हालत होने पर सुख अवश्य बढ़ जाता किन्तु दुख फिर भी कुछ न कुछ बाक़ी रह जाता है। तब और गहरा सोचता है, और इस नतीजे पर पहुँचता है कि हमें पूर्ण सुख प्राप्त करने के लिए 'सम्पूर्ण' का ध्यान करना चाहिए । पूर्ण रूप से मोक्ष हासिल करने के लिए 'उसका' ध्यान करना चाहिए (पूर्ण रूप होने का लिये । जिसमें 'पूर्ण आनन्द' है, वही ईश्वर है । जिसमें पूर्ण ज्ञान है और सब का पूर्ण ज्ञान है, सब में समाया हुआ है, सब उसमें समाये हुये हैं, लेकिन यह सब होते हुए भी वह सबसे न्याश भी है, पूर्ण रूप से कर्ता होते भी वह अकर्ता है, सकल वस्तुओं को अपने अन्दर

रखता हुआ भी सबसे अलग है, न्यारा' है, तब वह उसका ध्यान करता है । सब कुछ उसको अर्पण कर देता है । सब कुछ उसके ध्यान में लय कर देता है । जितना वह उसमें लय होता जाता है, अपना रूप भूलता जाता है उसके रूप मे परिवर्तित होता जाता है और पूर्ण रूप से उसमें लय होने पर ईश्वर रूप हो जाता है | यही मानव योनि का आदर्श है. जो उसने प्राप्त कर लिया ओर उसका जन्म सफल हो गया जिसके लिए वह इस संसार में आया था और अब सदा के लिए इस प्रपंच से छूट गया ।

अभ्यासी गलती से समझने लगते हैं कि इस गति को हासिल करने के लिए संसार का त्याग करता होगा। यह उन का भ्रम है । दुनियाँ भी रहेगी कर्म भो रहेंगे, यही वातावरण भी रहेगा, सिर्फ भाव को बदलना है । हासिल ही हासिल करना है । थोड़े से सुख को छोड़कर हमेशा हमेशा का सुख हासिल होता है । थोड़ी सी ज़िदगी को छोड़कर हमेशा-२ को ज़िन्दगो मिलती है। दुनियाँ की थोड़ी सी चोज़ें छोड़ने से दुनियाँ को सभी चीज़ें मिल जातो हैं । संसार को मन से छोड़ने से संसार का स्वामो बन जाता है । यही सच्चा परमार्थ है।

सन्तों को महिमा

महापुरुष ईश्वरीय अंश को लेकर संसार में प्रकट होते हैं । उनकी रहनी सहनी अनुकरणीय होती है । वे अपनी मिसाल पेश करके लोगों को दिखलाते हैं कि किस तरह इस संसार रूपी काल कोठरी में रहते हुए मनुष्य अपने आप को इस माया रूपी कालोंच से अहलदा रख सकता है । जो उनसे प्रेम करते हैं, उनके साथ रहते हैं वह भी उनकी सौहवत के असर से भवसागर पार हो जाते हैं। जब जब धर्म की हानि होती हैं और अधर्म, धर्म पर छा जाता हैं, हर तरफ अन्धकार ही अन्धकार फैल जाता है, आदमियों का जीवन दुःखमय हो जाता है, हाहाकार मच जाता है, हर तरफ दुख ही दुख नज़र आता है, किसी तरफ़ सुख नज़र नहीं आता, और आदमी हर तरफ़ से निराश और परेशान होकर उस आदि शक्ति की जानिब रागिब होता है, रोता और गिड़-गिड़ाता है, तब उस परमपिता परमात्मा की दया की मौज जोश में आती है और अपनी महान शक्ति किसी मोक्ष आत्मा को देकर इस दुनियाँ में भेजता है। ऐसी महान आत्मायें इस दुनियाँ में हमेशा आती रहीं और आती रहेंगी । ज़रूरत के मुताविक इनको ईइवरीय शक्ति मिलती है । मौजूदा ज़माने में चेतन्य महाप्रभु कबीर साहव, गुरु नानक देव, श्री राम-कृष्ण परमहंस, स्वामी, दयानन्द सरस्वती, श्री शिव दयालसिंह साहब, श्री मुजहिद साहिब श्री अब्दुल खालिक, जीलानी, श्री मुइनुद्दीन चिह्ती, श्री बाबा फरीद, श्री निजामुद्दीन औलिया, महात्मा गाँधी, वग्गेरह वगैरह आये।

इन महात्माओ का जीवन ही दूसरों के लिए होता है । तकलीफें उठाते हैं, मुसीबर्ते भोगते हैं लेकिन अपने रास्ते से नहीं हटते । यहाँ तक कि सूली तक पर चढ़ना मंजूर कर लेते हैं, ज़हर तक खुशी खुशी पी लेते हैं, गोली का शिकार भी होते हैं लेकिन धर्म नहीं छोड़ते । आख़िर वक्त तक़ दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं । दुश्मन के लिये भी उनके दिल में बैर नहीं होता । मुहब्बत ही मुहब्बत होती है। ऐसे मनुष्य बचपन ही से दयालु होते हैं हरेक की हर तरह से मदद करना उनका

काम होता हैं। दूसरों की तकलीफ़ दुखी और उनके सुख में सुखी रहते हैं. सबके साथ मिले हुये, और सबसे अलहदा । .पुरानी मज़हबी गुत्थियों को सुलझाते हैं । समय की दिक्कतों का ख्याल रखते हुये नये तरीके ईजाद करते हैं जिससे हरेक शख्स उनके तरीके से फ़ायदा उठा सके । उनका किसी पन्थ से द्वेष भाव नहीं होता । सभी के साथ मुहब्बत और सहानुभूति से काम लेते हैं। सभी मज़हबों में सच्चाई देखते हैं। प्रेम ही उनका मजहब होता है । पक्षपात से बहुत दूर । अपने उसूलों के बड़े मज़बूत । कोई दुनियावी लुभाव या डराव उनको अपने रास्ते से नहीं हटा सकता । जब जब ऐसी महानात्मायें आती हैं रहानियत का सेलाब बाढ़ जारी हो जाता है प्यासों की प्यास बुझ जाती है और चारों तरफ आनन्द फैल जाता है । जिस तरह सूरज के निकलने पर किसी गवाही की ज़रूरत नहीं होती कि सूरज निकल आया, उजाला ही उसका खुद-सबूत है, इसी तरह इनके पैदा होने पर किसी गवाही जरूरत नहीं । उनकी मौजूदगी और उनके चारों तरफ प्यार और शान्ति का वातावरण खुद इस बात का सबूत है कि किसी रूहानी मौअल्लम की पैदायश हो गई । झुण्ड के झुण्ड लोग चारों तरफ से उमड़ पड़ते हैं, और जैसे प्यासे गंगा माता के पास पहुंचते हैं, उसके पवित्र जल को पीकर शान्त हो जाते हैं और आनन्द से भर जाते हैं इसी तरह जो उनके नजदीक आते हैं उनके दुखों का खात्मा हो जाता है। शान्त हो जाते हैं और आनन्द से भर जाते हैं और कुछ दिनों में कुछ से कुछ हो जाते हैं । उनकी सौहबत की बरकत से ही अज्ञान दूर हो जाता है । इख़लाकी कमजोरियाँ दूर हो जाती हैं। बेचैनी की जगह शान्ति, तकलीफ की जगह आनन्द जगह कर लेता है और दुनियाँ की काया पलट जाती है ।

सतसंग के अनुभव

देश तीन हैं । दयाल देश, काल देश, माया देश । दयाल देश वह देश है जहाँ आत्मा ही का वासा है प्रेम ही प्रेम है और माया यानी अपने पराये का कोई दखल नहीं । इसी को सन्तों का देश भी कहते हैं। दूसरा काल देश -- यहाँ पर इस देश में झीनी माया का दखल है । तीसरा पिण्ड देश -इस देश में आकर आत्मा के ऊपर एक दूसरा पर्दा मोटी माया का यानी इन्द्रिय भोग का पड़ जाता है । जिन आात्माओं मे सिवाय परमात्मा के प्रेम के और कोई ख्याल और ख्वाहिश नहीं होती वे दयाल देश में रहती हैं । जिन आात्माओ पर सूक्ष्म माया का पर्दा हो जाता है वे काल देश में आ जाता ताकि उन संस्कारों को भोग कर दयाल देश में वासा कर सके । जिन आात्माओं पर ख्याल की पुख्तगी की वजह से इन्द्रिय भोग की ख्वाहिश पैदा हो जाती है वे पिण्ड देश में आ जाती हैं । यहाँ आकर उन्हें दोनों पर्दों यानी सूक्ष्म और स्थूल माया के पर्दों पर से अपने को साफ करना होता है ।

जब तक वह पर्दों को नहीं हटा लेती तब तक दयाल देश या सन्त लोक में नहीं पहुंच सकतीं । दयाल देश या सन्त लोक ही हमारा आदर्श है। जब आत्मायें काल देश में आकर झीनी या मोटी माया के नीचे आ जाती हैं वे उससे आजादी हासिल नहीं कर सकतीं और जिस काम के लिए आई थीं वह पूरा नहीं होता तब उसको दुख और घबराहट पैदा होती है । यही कारण है कि हरेक इन्सान दुनियां की बस्तुओ के होते हैं हुए भी सुखी नहीं है और परेशान है, क्योंकि जिस अमर सुख, शान और ज़िन्दगी के लिए वह कोशिश करता है वह उसको हासिल नहीं होती और मन की ख्वाहिशात और वासनाओ में ही फेंसा रहता है और चू कि "मन उस पर हावी हो गया है वह खुद इस माया के भँवर से नहीं निकल सकता ।

जब ऐसी हालत हो जाती है तब प्राणी सब तरफ़ से हट कर उस आदि शक्ति की तरफ़ मुखातिब (आकृष्ट) होता है । उसको प्रेम की मौज उठती है ओर वह अपनी शक्ति के साथ इन्सानी शक्ल अखत्यार करता है । धनी तो अपने लोक में बैठा रहता है लेकिन उसकी शक्ति की धार इन्सानी चोला इख्त्यार कर लेती है । जिस तरह चाँद को खिचावट की वजह से समुद्र में ज्वार आ जाती है और उसका पानी सकड़ों मीलों तक दरिया (नदी) में चला जाता है लेकिन समुद्र अपनी ही जगह पर मौजूद रहता है इसी तरह से वह आदि शक्ति इन्सानी जिस्म (नर देह) में आ जाती है । इसी को अवतार, सन्त, औलिया बगैरह कहते हैं । ये नाम उस की शक्ति के मुताबिक (अनुसार) से रखे जाते हैं । इन में थोड़ा अन्तर होता है ।

इन महान आत्माओं में अधिकतर दो किस्म के लोग होते हैं । एक वे जो जीवों को प्रेम का सबक़ सिखा कर अपने से प्रेम करा कर अपने धाम का रस्ता बता कर अपने साथ ले जाते हैं। दूसरे वे जो शुरू में तो प्रेम से ही काम लेते हैं । लेकिन जब देखते हैं कि जीव मन के चक्कर से नहीं छूटता और बार-बार उसी में फँसता है तो फिर सख्ती से भी काम करते हैं । इन्हीं महान आत्माओं में से कुछ आत्मायें गुरु कहलाती हैं । यह प्रेम और नरमी ही से फाम लेते हैं । सस्ती शादोनादिर (कभी-कभी) ही करते हैं ।

इसी तरह से जिज्ञासुओं के भी कई दर्जे होते हैं । सब से उत्तम जिज्ञासु तो वह है जिसकी परमात्मा पर से तक़रीबन (लगभग) सब परदे हट चुके हैं । कोई पर्दा झीनी माया का अभी बाक़ी है । यह काल देश के वासी होते हैं । जब कोई सन्त दयाल देश से आता है यह उस के साथ इस पृथ्वीलोक पर आ जाते हैं । उन को कुछ करना धरना नहीं होता । उन को गुरु से सच्चा प्रेम बगैर किसी ग़रज के होता है । गुरु के सत्संग से ही झीनी माया का पर्दा हट जाता है । आत्माओं का प्रेम जाग उठता है। सब इच्छाओं से उपराम होकर सदा परमात्मा के प्रेम में मग्न रहते हैं और गुरु से

मिलकर एक हो जाते हैं । इन्हीं को 'मुराद' 'फ़िदाई' , 'फज्ली' , वगैरा नामों से पुकारते हैं । यह गुरु की जिन्दगी में कश्फी (गुरु के आकर्षण) या कस्बी (मेहनत) तरीके से आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं । गुरु के वापिस जाने पर यह उनका काम करते रहते हैं । उन को मदद बराबर धुर धाम से मिलती रहती है और मरने पर भी उसी लोक को चले जाते हैं ।

दूसरी किस्म के जिज्ञासु वे हैं । जो नेकी की जिन्दगी बसर करते हैं और नेकी ही उनकी जिन्दगी होती है । इन की अवस्था सतोगुणी होती है । यह मन की इस अवस्था से निकलना चाहते हैं । लेकिन निकल नहीं सकते । इनकी यह दुनियाँ भी बनती लेकिन मोक्ष नहीं होती । जब कोई महान आत्मा आती है तो यह भी बड़ी श्रद्धा के साथ उस तरफ राग़िब होते हैं । इनकी गरज़ अपना उद्धार होती है और दुसरे जीवों का उद्धार भी इनको कुछ न कुछ अभ्यास और मेहनत करनी पड़ती है लेकिन ज्यादा नहीं । ये गुरु की सौहबत और अभ्यास की मदद से आत्मा के पर्दे उतार लेते हैं और मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ।

तीसरी किस्म के जिज्ञासु वे हैं जो रज अवस्था में हैं, जो तम और सत दोनों की मिलौनी हैं । यह हृदय के मुकाम के वासी हैं । इन में दोनों ही किस्म कि ख्वाहिशात का शमूल (मिश्रण) रहता है । --तमोगुण और सतोगुण । यह द्वन्द की अवस्था में रहते हैं । कभी इस दुनियाँ की ख्वाहिश परेशान करती है और कभी परमार्थ की । इसलिये इन का मन चंचल रहता है । जब कोई सन्त आता है तो यह भी किसी दुनियाँवी ख्वाहिश को लेकर उन की खिदमत में जाते हैं । ख्वाहिश पूरी होने पर या तो ये भाग खड़े होते हैं या यहीं पर पड़े रहते हैं । आहिस्ता आहिस्ता इनका जावियेनिगाह (दृष्टिकोण) ऊँचा होने लगता है । मन रज से सत पर आने लगता है । दुनियाँवी ख्वाहिशें कम होकर परमार्थी ख्वाहिश बढ़ने लगती है । अगर इन को मौक़ा ज्यादा सौहबत का मिले और गुरु की मौजूदगी में आत्म-साक्षात्कार का मौक़ा मिले तो ये भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते

हैं । लेकिन ज्यादातर सत के मुकाम पर आकर रुक जाते हैं । और काल देश तक पहुंचते हैं । वाज़ अभ्यासी वक्त का फ़ायदा न उठाकर दुनियाँवी खेलकूद में लगे रहते हैं और फिर इन्सानी योनि में आते हैं। सत्संग का फल इन्हें भी मिलता है और पहले से अच्छी हालत में आतें । इन्हें ज्यादा सत्सग और ज्यादा अभ्यास की ज़रूरत है ।

चौथी किस्म के जिज्ञासु वे हैं जो दूसरे जिज्ञासुओं की देखा देखी सत्संग में आते हैं और थोड़े दिनों रहकर भाग खड़े होते हैं । और अगर किसी वजह से पड़े रहते हैं तो कुछ न कुछ फ़ायदा तो ज़रूर होता रहता है और दूसरे प्राणियों से सुखी रहते हैं ! लेकिन इन्हें जन्म धारण करना पड़ता है और मोक्ष के अधिकारी नहीं होते । अगले जन्म में उन्हें उस सत्संग का फल मिलता है ।

ऊपर की इबारत (भाषा) से साफ़ जाहिर है कि सबसे उत्तम अधिकारी को केवल सत्संग की जरूरत है, ये भक्ति का नमूना दिखलाने आते हैं ताकि और लोग भी उनकी देखा देखी गुरु से प्रेम करके अपने को मोक्ष का अधिकारी बना लें । उत्तम और मध्यम साधकों को सत्संग के साथ साथ अपनी कोशिश की भी ज़रूरत है ।

इसलिये हर सत्संगी को वाजिब है कि अपनी हालत का अन्दाज़ा करके या अगर ख़ू द समझ में न आती हो तो अपने आचार्य से पूछ कर सत्संग करता हुआ अभ्यास करे और गुरु की सोंहबत (सत्संग) से भी फ़ायदा उठाना चाहिए और ख़ूद भी मेहनत करनी चाहिये । मतलब यह है कि अभ्यास से उसके मन का घाट बदलता जाय | तम से रज और रज से सत पर चला जाय। अगर सत्संग ही पर भरोसा करेगा तो जैसा फ़ायदा होना चाहिये, नहीं होगा ।

करनी, कथनी और रहनो

(प्रवचन गुरुदेव दि० २८-३-६४)

परमार्थ के रास्ते में करनी, कथनीं और रहनी, इन तीनों का बहुत महत्व हैं । कबीर साहब ने कहा हैं ।

करनी कर सो बाप हमारा, कथनी करैं सो नाती ।
रहनी रहैं सो पुत्र हमारा, हम रहनी के साथी ॥

पिता को अपना पुत्र प्यारा होता हैं, पुत्र से अधिक प्यार नाती से होता हैं और सबसे अधिक प्यार गुरु से होता हैं क्योंकि गुरु ही ईश्वर से मिलाने वाला होता हैं । कबीर साहब कहते हैं कि जो मनुष्य ऐसे कम करता हैं जो उसे परमार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ाते हैं, यानी सत्कर्म करता हैं वह मुझे पुत्र की तरह प्यारा हैं । जो मेरे कहने के अनुसार कर्म करता हैं (यानी जो गुरु के कहने पर चलता हैं) वह मुझे नाती की तरह प्यारा हैं और जिसने अपनी रहनी सहनी (Practical life) मुझ जैसी (सन्तों जैसी) बना ली हैं वह मुझे गुरु की तरह प्यारा हैं । मैं उसी का साथी हूँ।

दो चीज़ें होती हैं । एक Theory (सिद्धान्त) और दूसरी Practice (प्रयोग, व्यवहार में लाना) । करनी और कथनी दोनों Theory में आते हैं । थोड़ा सा अन्तर जरूर हैं करनी यानी सत्कर्म को मनुष्य अपने मन से सोच कर या दूसर के देखा-देखी भी कर सकता हैं लेकिन कथनी करनी वह हैं कि जो गुरु के वैसा करे। तब गुरु का प्यार मिलता हैं । बिना गुरु का प्यार मिले गुरु और शिष्य का मन एक नहीं होता और बिना मन एक हुए रहनी यानी व्यावहारिक जीवन (Practical life) नहीं बनती ।

पहले-पहल शिष्य अपनी बुद्धि से ही गुरु के उपदेश को क़बूल करता है परन्तु मन उस का साथ नहीं देता तर्क-वितर्क उठाया करता है कि जो कुछ उन्होंने कहा है वह ठीक है या ग़लत है, उसे करेंया न करें। इसलिए पूरा फ़ायदा नहीं होता। जब मन क़बूल कर लेता है तब इन्द्रियाँ साथ देने लगती हैं और परमार्थ के रास्ते में आगे बढ़ने लगता है। परमात्मा के पाने का रास्ता बहुत लम्बा हैं। सिद्धान्त को कौन नहीं जानता, रहनी कौन नहीं बना सकता लेकिन. Theory यानी सिद्धान्त को प्रयोग में लाना बहुत कठिन है। बीच में जो मन है वह ऐसा नहीं होने देता। ऐसा कौन है जो गुनाह नहीं करता ? ऐसा कौन है जो सिद्धान्त रूप से यह नहीं जानता कि ईश्वर हर जगह मौजूद है लेकिन गुनाह करते वक्त यह ख्याल कहाँ जाता है ? उस पर मन हावी हो जाता है। इसलिए कथनी पर चलने में मन को गुरु की नाराजगी का डर रहता है, कहीं गुरु रूठ न जायें, कोई काम ऐसा न हो जिससे मैं गुरु के प्यार से वंचित रह जाऊ। कथनी में यही अंकुश सहायक होता है। हम गुरु के प्यार के खौफ़ में कथनी पर चलते हैं और रहनी-सहनी बनाते चले जाते हैं, यही असली परमार्थ है।

निचले दर्जे का ज्ञान यानी भौतिक वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों से आता है। उस से ऊँची अवस्था में यानी सूक्ष्म अवस्था में जो ज्ञान आता है वह मन से आता है और मन की झलक लिए होता है। परन्तु कारण से भी महाकारण का ज्ञान, सबसे विशुद्ध ज्ञान यानी परमात्मा का ज्ञान सिर्फ़ आत्मा से अनुभव होता है। लेकिन आत्मा जन्म-जन्मान्तर से मन और उसकी वासनाओं के आवरणों से ढकी चली आ रही है। इसलिए जब तक वह निर्लेप न ह जाये और मन के फन्दों से न्यारी न हो जाये तब तक सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जैसा आपका ख्याल होगा मन वैसा ही रूप दिखायेगा। जो इच्छा आज आप कर रहे हैं यानी परमात्मा को पाने की, वह और इच्छा के मुकाबले में दबी हुई है। जब तक उस में सच्ची Intensity (उग्रता) पैदा नहीं होगी तब तक आप कामयाब नहीं होंगे। जैसे जंसे आप के ख्याल में तेजी आती जायेगी

वैसे वैसे कामयाबी होने लगेगी और आहिस्ता- आहिस्ता जैसा आपका ख्याल है वैसे ही हो जायेंगे । हमारा मतलब है कि आत्मा को मन के धोखे से बचाना चाहिए । पर माया जिसका Representative (प्रतिनिधि) मन तुम्हारे अन्दर बैठा हुआ है वह आसानी से पीछा नहीं छोड़ती । जवाँ मर्द (शूरवीर) वही है जो रास्ते पर डटा रहे और मन को काबू में कर लें ।

हमारे यहाँ सन्तमत में माया से लड़ाई नहीं लड़ते, उसका विरोध नहीं करते । माया को माँ का रूप मान कर उसका सहारा लेकर, आदर करते हुए उससे बच कर निकल जाते हैं। सारी सृष्टि, प्रकृति की एक-एक चीज़ , सारे ब्रह्मांड माया के चक्कर में नाच रहे हैं । यह बड़ा विचित्र है । आदमी का मन इसी का रूप है । वह उसे जैसा चाहे बनाती है । इसीलिए हरेक Individual (व्यक्ति) में फर्क है । आत्मा तो सब की एक सी है, सिर्फ मन ही सब का न्यारा है । इसी के कारण सब का स्वभाव शक्ल सूरत और आदतें एक सी नहीं होती । दुनियाँ में जब से सृष्टि बनी, अरबों खरबों इन्सान पैदा हुए और मर गए लेकिन दो कभी हु-ब-हू एक जैसे नहीं हुए । इसी तरह पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, सभी में एक' जैसा दूसरा कभी नहीं होता । बाहर से देखने में कैसा ही एक सा लगे, स्वभाव में फर्क होगा, लिखाई में फ़र्क होगा, आवाज़ अलग-अलग होगी, उम्र भी अलग-अलग होगी । यही इस माया की विचित्रता है । चूंकि मन माया का ही रूप है इसीलिए माया के पसारे से यानी दुनियाँ से इसे स्वाभाविक प्रेम है । सर्फ एक आत्मा ही ऐसी है जिसे ईश्वर से सच्चा प्रेम है। और यही असली प्रेम है । बाकी प्रेम जो दुनियाँ के रिश्ते से होते हैं, सब झुठ हैं । उनमें कुछ न कुछ ग़रज़ (स्वार्थ) है । जिस प्रेम में कोई ग़रज़ न हो वही सच्चा प्यार है । उस प्यार में इतनी कशिश (आकर्षण) होती है कि उसके सामने दुनियाँ के नफे नुकसान की कोई परवाह नहीं होती । सच्चा प्रेमी तो कहता है कि चाहे मेरे बच्चे न रहें, घर जल जाय, शरीर बीमारी का घर बन जाय, तो भी ईश्वर का प्रेम मुझ से दूर न छूटे । ऐसी हालत तब तक नहीं आती जब तक आत्मा मन से

न्यारी होकर शुद्ध नहीं हो जाती । इसलिए मन के प्यार से हट जाना चाहिए । जो आत्मा की नजर से प्यार करेगा या तो वह ईश्वर होगा, या उसका कोई सच्चा प्रेमी ।

बहुत से लोग चालीस दिन तक रोज़ा (उपवास) रख कर ईद का चाँद देखते हैं । पर असली ईद क्या है ? इसे हरेक समझने की कोशिश नहीं करता | चालीस दिन का रोज़ा रख कर एकान्त में तल्लीनता से भजन ध्यान किया जाय तो त्रिकुटी में चन्द्रमा के दर्शन होते हैं । हज़रत मौहम्मद ने जब चानीस दिन तक रोज़ा रखा और चिल्ला चढ़ाया तब त्रिकुटी पर दूज का चाँद दिखाई दिया । उससे ऊपर पूर्णमासी का चन्द्रमा, फिर उस से भी आगे सूर्य के दर्शन होते हैं । यह केवल कल्पना ही नहीं है । सन्तों ने इस का अनुभव किया है । वे जब अन्तर की चढ़ाई करते हैं तो जिस आन्तरिक चक्र पर पहुंचते हैं वहाँ का हाल बयान करते हैं । मनुष्य की देह में नीचे से ऊपर तक कुल २१ चक्र होते हैं । गुदा से लेकर माथे तक हैं, ६ वहाँ हैं जहाँ ग्रे मेटर (Gray matter) है । (यह दिमाग़ में होता है।) छे चक्र Bright matter (ब्राइट मैटर) में है--यहीं पर शब्द गूज रहा है | जो ग्रे मैटर में हैं उन का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है । वहाँ भी ६ लोक हैं जिनका जगाना इससे सम्बन्ध रखता है । अधिकतर सन्तों ने १८ चक्रों का हाल लिखा है। शेष तीन चक्र गुप्त हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते, केवल अनुभव किए जाते हैं। किसी एक चक्र पर पहुंच कर वहाँ ठहर जाना सन्तों का लक्ष्य नहीं होता, इसलिए वे बराबर ऊपर उठते जाते हैं जब तक कि सब चक्रों को पार करके दयाल देश में नहीं पहुंच जाते ।

साधारण स्त्रियों में पन्द्रह चक्र हैं । पशुओं में सिर्फ तीन चक्र होते हैं, काम, आलस ओर क्रोध । मनुष्यों में भी अन्य चक्रों के अलावा यह चक्र होते हैं और जो मनुष्य केवल इन्हीं में बरतते हैं ऊपर नहीं उठते, वे जीते जी पशु समान हैं और मरने के बाद पशु योनि में जाते हैं । लेकिन अगर उनसे उपर के चक्रो में बरतते हैं तो इन्सान. बन सकते हैं । कहने का मतलब यह है कि जितनी

वासनाओं से ऊपर उठोंगे उतनी ऊँची योनि प्राप्त करोगे । नीचे के चक्रों में बरतते वक्त सिर्फ फर्ज पूरा करने के लिए उतरो लेकिन ऊपर की लगन यानी डोरी न टूटने पाये । हमारी आपकी पैदायश हृदय चक्र से हुई है । राम अवतार थे, उनकी . पैदायश त्रिकुटी के मुक़ाम से हुई थी । इस जन्म में हम जिस चक्र तक रसाई हासिल कर लेंगे, अगले जन्म में हमारी पैदायश वहीं से होगी ।

सन्त दो प्रकार के होते हैं । एक अवतारी सन्त जो दयाल देश से आते हैं । जीवों को चेताकर उन्हें आत्म-ज्ञान के रास्ते पर लगाकर अपना काम पूरा करके वापिस लौट जाते हैं । दूसरे वे होते हैं जिनके ऊपर अवतारी सन्त अपना काम छोड़ जाते हैं । उसे पूरा करके स्वयं निर्वाण प्राप्त करते हैं और आगे काम करने के लिए किसी अन्य को नियुक्त कर जाते हैं । गुरु हर व्यक्ति नहीं हो सकता । जिसके लिए ऊपर से हुक्म होता है वही इस सेवा को कर सकता है । इस काम में धोखा बहुत है ! अतः किसी सच्चे गुरु की खोज करनी चाहिए । कोई ऐसा महापुरुष मिल जाय जिसने स्वयं आत्मानुभव कर लिया हो वही रास्ता दिखायेगा । उसके बताये हुए रास्ते पर चलकर जब तक स्वयं आत्मानुभव नहीं कर लोगे तब तक भव जाल से नहीं निकल सकोगे । अतः महापुरुष की खोज करो जो बाहर से स्थूल शरीरधारी हो और अन्दर से आत्मा में लीन हो ।

कमल पद्म उसे कहते हैं जो ब्रह्माण्ड में है । जानवरों के कुल तीन चक्र खुले होते हैं । बाकी सब बन्द होते हैं उनको खोला नहीं जा सकता, उन पर डाट लगे होते हैं । यानी चक्र की जगह सिर्फ -- (वन्दु) होते हैं । साधारण स्त्रियों में केवल पन्द्रह चक्र खुले होते हैं । शेष सब बन्द रहते हैं । उनकी बनावट (constitution) ही ऐसी होती है । पुरुषों में अठारह चक्र होते हैं । जिनके अलावा तीन चक्र गुप्त होते हैं । कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी हुई हैं जिनके अठारह चक्र खुले हुए थे । जैसे मीराबाई, सहजोबाई । साधारण स्त्रियों के चक्र देवी-देवताओं के स्थान तक ही खुले रहते हैं ।

सबसे निचला और पहला चक्र गुदा के स्थान पर होता है । दूसरा इन्द्री के स्थान पर, तीसरा नाभी के स्थान पर, चौथा हृदय के स्थान पर, पाँचवा कण्ठ के स्थान पर और छटा चक्र त्रिकुटी (भौंहों के वीच की जगह) से तीन इंच नीचे की ओर है । वहीं प्रकाश है । यदि वह स्थान (disturb) उथल-पुथल हो जायेगा तो प्रकाश नहीं आयेगा । जब मनुष्य तम में बसता है तो यह प्रकाश नहीं होता । तम माने इन्द्रियाँ यानी जब तक वह अपनी इन्द्रियों के वश में रहेगा त्रिकुटी के स्थान पर नहीं पहुंचेगा और न ही उसे प्रकाश के दर्शन होंगे । इन्द्रियों को मन से अलग करना होगा । अभ्यास में दोनों (Optic Nerves) (वे स्तायु जो दोनों आँखों से त्रिकुटी में जाती हैं।) को फाड़कर ऊपर जाते हैं । कहा जाता है कि हज़रत मौंहम्मद सफेद घोड़े पर सवार होकर आसमान में गये और उन्होंने चाँद के दो टुकड़े कर दिये । यह त्रिकुटी का पार करना है। सफेद घोड़ा प्रकाश का द्योतक है । शिवजी के माथे पर चन्द्रमा बनाया है । यह त्रिकुटी का द्योतक है । राम ने इसी स्थान पर शिवजी का धनुष तोड़ा था । धनुष त्रिकुटी का द्योतक है । इसी त्रिकुटी के स्थान से सारे वेद-वेदान्त और कुरान लिखे गये हैं यही से आत्मा बुद्धि को प्रकाश देती है । जागृत सुषुप्ति, तुरिया , तुरीयातीत अवस्थाओं में थीं से ज्ञान प्राप्त करते हैं अतः इस मुकाम पर ही पहुँच कर सारे उच्च कोटि के धर्म ग्रन्थ (Scriptures) लिखे गये हैं । अधिकारी वह है जिसे दुनियां की सब चीजें मयस्सर हैं परन्तु फिर भी दुखी है।

--- --- ---

संतों की सेवा का रुप, दीनता व प्रेम

(गोरखपुर--दिनांक ४-६-१६६४)

जो ईश्वर के बारे में जानना चाहता है और उसे पाना चाहता है, वही ईश्वर है । अन्तर केवल इतना है कि जिसको जानना चाहता है वह निर्लेप है और जो जानना चाहता है वह लिप्त है । जिन आवरंणों में लिप्त है उन्हीं के कारण ईश्वर को या अपने आपको जानने और पाने में वाधा है । उसी बाधा के कारण जो ईश्वर अंश रूप में स्थूल देह (आवरणों) में बँधा हुआ है उसे ईश्वर न कह कर 'आत्मा' की संज्ञा दी गयी है । आत्मा जानवरों में भी है और मनुष्यों में भी । केवल, उसकी चेतन शक्तियाँ उसमें फ़र्क डालती हैं । जानवरों में ज्ञान शक्ति कम है या न के बराबर है । उसकी तुलना में मनुष्य में ज्ञान शक्ति बहुत अधिक है । मनुष्यों-मनुष्यों में भी ज्ञान शक्ति में फर्क है । जिसमें ज्ञान शक्ति, चेतन्य शक्ति अधिक है, उतनी ही उसमें सत् चित् आनन्द की मात्रा अधिक है । केवल उसके जागृत करने और विकास की आवश्यकता है ।

जीवन तो पत्थर पेड़-पौंधे, स्थावर जंगम, सब में है । सभी में आत्मा है, परिस्थिति के अनुसार न्यूनाधिक चैतन्यता भी है परन्तु यदि कोई वस्तु मनुष्यों के अतिरिक्त उनमें नहीं है तो वह है इच्छा शक्ति (Will Power)। मनुष्य इस विषय में अन्य जीवधारियों से ऊँचा है, या यों कहो कि सर्वोच्च है । उसमें आत्मा तो है ही, चेतन शक्ति है, सत् चितू आनन्द का खज़ाना छिपा पड़ा है और उसमें इच्छा शक्ति बहुत है । वह अपने आपको भी समझता है दूसरों को भी और इस तरह वह समझने या जानने के ज्ञान को आगे बढ़ाता जाता है । ज्यों-ज्यों वह इस ज्ञान में उन्नति करता जाता है वह उस वस्तु के समीप पहुँचता जाता है जिसका ज्ञान करना उसे अपेक्षित है । दरअसल में जिस चीज़ का ज्ञान आप करना चाहते हैं, जिसे आप वास्तव में जानना चाहते हैं, वह है रूह यानी आत्मा । उसके असली रूप को जानने यानी उसका ज्ञान पाने की खोज में जितना आप आगे बढ़ते

जायेंगे उतनी ही आपकी आत्मा लिप्त से निर्लेप होने लगेगी और एक दिन वह आयेगा जब आप स्वयं ईश्वर या खुदा हो जायेंगे ।

जब आपको अपना ख्याल आता है तब आपको यह भी ख्याल होता है कि आपसे बड़ी हस्ती (शक्ति) भी कोई है, आप उस तक पहुँच नहीं पाते या उसे जानते नहीं हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि आपमें वह चीज़ है ही नहीं । चीज़ तो है परन्तु उस तक पहुँचने के लिए आपमें उत्साह और व्याकुलता नहीं है । इसी उत्साह और व्याकुलता का दूसरा नाम चेतना है । जितनी ही आपकी चेतना विकसित होती जायगी उतनी ही असलियत मालूम होती जायगी । इसी को 'ज्ञान' कहते हैं ।

बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता । जो अनुभव गुरु अपनी खैंच-शक्ति द्वारा कराता है उसे सूफी भाषा में 'कश्फ़' कहते हैं । इसके विपरीत शिष्य गुरु का सहारा लेकर जो ज्ञान अपने अभ्यास द्वारा प्राप्त करता है उसे सूफी भाषा में 'कस्ब' कहते हैं । गुरु कितना ही ऊँचा हो, सबको अपनी खैंच-शक्ति से अनुभव नहीं करा सकता । गुरु और शिष्य दोनों में पूर्णता हो तभी ऐसा अनुभव होता है। गुरु की पूर्णता यह कि यह आत्मज्ञानी हो और शिष्य की भलाई के सिवाय उसकी कोई और इच्छा न हो। शिष्य मौअद्दिब हो, यानी पूरी तरह गुरुमुख हो, गुरु के आदेशों पर चलने वाला हो और सर्वस्व गुरु के आश्रित हो । उसमें इतनी शक्ति हो कि वह आत्मज्ञान को क़बूल कर सके । जब यह दोनों बातें होती हैं तो गुरु कृपा पूर्ण रूप से शिष्य पर उतरती है और तभी कश्फ़ी ज्ञान होता है । यदि दोनों में से एक बात में भी कमी है तो कशफ़ी ज्ञान असम्भव है। यह धोखा नहीं है । वजह सिर्फ यह है कि या तो हममें कमी है या आपमें क़बूल करने की शक्ति का अभाव है ।

गुरु का स्मरण यह है कि अगर उस पर विश्वास है तो उसकी बातों को सही मान कर दिल में रख लो । यदि आपने दरअसल अपने गुरु में विश्वास कर लिया है और अपनी बुद्धि से उसकी

बातों में तर्क नहीं करते तो वह आख़िर तक आपको इस दुनियाँ से निकाल ले जायगा । लेकिन अगर मन और बुद्धि से उसको तौलते हो तो यह मन-मत होना आपकी मदद नहीं करेगा ।

सबसे ऊंचा और असली ज्ञान है अपने अन्तर में आनन्दित रहना अन्तर में आत्मा का स्थान है, वही आपको प्रकाश, ज्ञान और आनन्द देगा । लेकिन इसमें भी धोखा हो जाता है क्योंकि कभी-कभी मन बीच में आ जाता है । उससे बचने के लिये ज़रूरी यह है कि किसी महापुरुष (सन्त) को अपना शुभचिन्तक या मित्र मान कर उसकी सलाह लेते रहें । अगर आप उसकी बातों और उसके आदेशों को नहीं मानते हैं. तो वह आपकी कैसे मदद करेगा ? उसकी बातों पर चलने से ही आपका कल्याण होगा ।

मनष्य का स्वभाव है आनन्द ढूँढना, जिस चीज़ में उसे आनन्द आता है उसे तलाश करता फिरता है । स्त्री का प्यार, धन सम्पत्ति, सांसारिक व्यसन, जो भी हों, जिसमें आनन्द मिलता हो उसमें अन्त तक लिप्त रह कर भी यह निष्कर्ष निकलेगा कि कोई भी सांसारिक आनन्द ऐसा नहीं है जो सदा बना रहे । सब वस्तुएँ नाशवान हैं इसलिये उनका आनन्द भी उन्हीं के साथ नष्ट होने बाला होता है । इसलिये दुनियाँ की चीज़ों में सिर्फ़ उतना ही फंसो' जितने के बिना काम न चले ।

गुरु जो कुछ कहे उसे पत्थर की लकीर मान लो । उसके प्रेम के आगे दुनियाँ की हर चीज़ तो क्या, ईश्वर भी कुछ नहीं हो सकता । धन, स्त्री सन्तान और दुनियाँ की चीज़ों में तो सभी फंसे हैं मगर उनसे सम्बन्ध ही न रखो, ऐसी बात नहीं है । सम्बन्ध तो रखो मगर फंसों मत । अपनी स्त्री को प्यार करो, धर्म का सहारा लेकर धन सम्पत्ति खूब कमाओ लेकिन इन सबमें फँसो मत । एक , स्त्री है, उस पर दूसरी करोगे तो नर्क में जाओगे । एक, दो, तीन या कई स्त्रियाँ करने पर तो कुत्ता बन जाओगे । इसका मतलब यह नहीं कि पत्नी को प्यार न करो, या धन व कीर्ति न कमाओ परन्तु यह सब धर्म का सहारा लेकर करो ।

सच्चे गुरु की मोहब्बत ही ईश्वर की मौहब्बत है । मिलान करते चलो और देखो कि किसकी मौहब्बत ऊंची है, इसकी या उसकी । सोचो कि हमने कितनी ग़लतियां की हैं पर अंत तक उसने हमें माफ ही किया है । लेकिन दूसरी ओर दुनियाँ में देखो । दुनियाँवी प्रेम में जरा सी गलती हुई कि उसने मुह मोड़ लिया । तो क्या यह दुनियाँ हमारी साथी है ? अपने ज्ञान की तराजू पर तौल कर देखिये कि किसकी मौहब्बत बेगरजाना (निस्वार्थ)है और अमर है-गुरु की या दुनियाँ की ।

इसलिये ज्ञानी वही है कि इस ओर (संसार) से मु ह मोड़ ले और उसे परमात्मा (या गुरु) के चरणों में जोड़ दे । इसका साधन क्या है ? साधन यहीं है कि हर काम को करते हुए भी मन चित्त से उसका (गुरु का) ध्यान करो । दुनियाँ की मौहब्बत में आनन्द तो है पर यह वह आनन्द नहीं है जिसकी हमें तलाश है । हमें तो वह आनन्द चाहिये जो सदा सदा बना रहे, जो सदा एक रस हो, जिसके सामने दुनियाँ के आनन्द हेच (नगण्य)हो।

सन्तों के पास तो दो चीज़ें हैं, एक दीनता और दूसरा प्रेम । वह इन्हीं से जन साधारण की सेवा करते हैं । वह सब पर अपनी कृपा की धार डालता है, फ़ायदा होना न होना उसके हाथ में नहीं है । अगर आपका ख्याल उधर की तरफ लगा है और आप सचेत हैं, उस धार को ग्रहण कर रहे हैं तो अवश्य फ़ायदा होगा।

सन्त दीनता और प्रेम से सेवा करते हैं । ईश्वर ने उन्हें संसार में इसीलिये भेजा है और यह सेवा वे वह करते हैं । फ़ायदा होना न होना उसके हाथ में है।

--- ---- --- ----

प्रेम भरी लताड़

(प्रवचन गुरुदेव)

बक्सर २१-१-१९६६ प्रातः ७ बजे

सभी जीव जन्तुओं की दुहरी जिन्दगी हैं। दुनियाबी (भौतिक) जिन्दगी ऊपर है और रूहानी (आत्मिक) नीचे दबी हुई हैं। भौतिक जीवन Temporary (अस्थायी) है और आत्मिक जीवन हमेशा रहने वाला है । भौतिक जीवन नक़ल है । असली जिन्दगी (जीवन) तो रूहानी (आत्मिक) है, दुनियाँ ने उसे ढक रखा है। जब तक दुनियाँ का तजुर्बा न होगा, यहाँ की वस्तुओं और सुख की नाशवानता का पता नहीं लग जायेगा, तब तक रुहानी जिन्दगी (आत्मिक-जीवन) की तरफ़ नहीं मुड़ेगा । अँधेरे से उजाले में कैसे आयेगा, बुराई छोड़कर भलाई की तरफ कैसे बढ़ेगा ? हमारी आत्मा जो दयाल देश से निकाली गयी और इस कालदेश यानी इस दुनियाँ में भेजी गयी उसकी वजह यही थी कि हमारे अन्दर ख्वाहिशात (कामनाएं-वासनाएँ) भरी पड़ी थीं। इसलिये परमात्मा ने दया करके हमें यहाँ भेजा । जब पैदा हुए और आँख खुली तो सबसे पहले मां-बाप को देखा, भाई-बहनों को देखा, फिर दुनियाँ की और चीज़ों को देखा और उनमे मोह हो गया । आये थे निकलने लेकिन उलटे उलझ गये

दुनियाँ के सब काम करते करते जीव सब बातों का कर्त्ता अपने आपको समझने लगता है लेकिन जब उसे होश आता है और दुनियाँ की बातों का तजुर्बा होता है तब वह देखता है कि जितने काम मैं कर रहा हूँ वह रहने वाले नहीं हैं । उनसे हासिल (प्राप्त) हुई खुशी रहती नहीं है, Temporary. (अस्थायी) है, जाती रहती है । शादी ब्याह किया तो खुशी मिली लेकिन शादी के बाद जब बाल-बच्चेदारी और गृहस्थी की दुख मुसीबतें सामने आती हैं तो वह खुशी जाती रहती है

। सन्तान पैदा हुई तो खुशी होती है लेकिन उसके मर जाने या अलहदा हो जाने पर क्या वही खुशी क़ायम रहती है ? रुपया पैदा करते हैं और उसे जोड़-जोड़ कर खुश होते हैं, क्या वह कायम रहेगा ? अलहदा तो ज़रूर ही होगा । बड़े-बड़े सेठ-साहुकार एक दिन में दीवालिया हो जाते हैं, बड़े-बड़े राजे-महाराजे खाने के लिये मोहताज दिखायी देते हैं । कहाँ गई वह खुशी ? हम यहाँ आये हैं दुनियाँ का तजुर्बा करने के लिये । इसलिये यह ज़रूरी हैं कि जितना आवश्यक हो उतना उसमें घुसो यानी ज़रूरत के मुताबिक उसमें व्यवहार करो लेकिन उसे लक्ष्य मत बनाओ । अगर उसी को सब कुछ समझ रंखा है तो ईश्वर के दरबार में कैसे घुसोगे ?

लोग कहते हैं कि तरक्की नहीं होती । फंसे हुए हैं दुनियाँ में, एक दो दिन को शौंकिया सत्संग में आये तो आ गये, घर पर-भी कभी सन्ध्या पूजा कर ली तो कर ली नहीं तो दुनियाँ के धन्धों में ही लगे रहते हैं। मकान बनवाने की ख्वाहिश हुई तो उसको बनाने के लिये रुपये के इन्तज़ाम की फ़िक्र हुई, कर्ज लिया या और कहीं से इन्तज़ाम किया । जब मकान बन कर तैयार हो गया और कर्ज़ा भी अदा हो गया तो यह फ़िकर पड़ गई कि कोई किरायेदार नहीं मिलता । जब किरायेदार मिल गया, माल इकट्ठा होने लगा तो चोर-डाकू आने लगे, रखवाली कि फ़िकर पड़ गई क्या जिन्दगी भर यही करते रहोगे ? ईश्वर का ध्यान कब करोगे ? किसी को देखो तो बेटों की शिकायत करता है कि कहना नहीं मानते । यह तो दुनियाँ का क़ायदा है । वो अपना घर देखें या तुम्हारा देखें ? इसमें शिकायत काहे की ? बहुए आती हैं अपना घर छोड़ कर। और बेटा बहु की नहीं सुनेगा तो क्या तुम्हारी सुनेगा । सासें शिकायत करती हैं कि जब से बहू आई है तब से बेटा हमारी बात नहीं सुनता । उनसे कोई पूछे क्या तुमने अपने बेटे को परमेश्वर समझ रखा है कि वही तुम्हारा पालन-पोषण करेगा, क्या उसके पहले भूखे मरते थे या उसके बाद भूखे मरोगे। तुमने अपना फर्ज़. पूरा कर दिया । अब यह तुम्हारे बेटे की जिम्मेदारी है कि वह अपना फर्ज पूरी तरह

अदा करता है या नहीं । अगर वो अपना फर्ज़ अदा नहीं करता तो इसमें दुःखी होने की कया बात है । अगर लड़कों के झंझट में पड़े रहोगे तो ईश्वर की तरफ़ ध्यान कैसे लगेगा ।

जो चीज़ हमें ईश्वर से दूर करती है, हमें चाहिये कि उसे छोड़ते चलें और जो चीज़ हमें ईश्वर के नज़दीक लाती है उसे अपनाते चलें । लेकिन ऐसा कर नहीं पाते । बात क्या है ? अभी अधिकार पैदा नहीं हुआ । संस्कार तो बना और मनुष्य जन्म भी मिला लेकिन अधिकार भी बनता तो गुरु की ओट लेते जिससे मन से पिण्ड छूट जाता । लेकिन जो समझते हैं कि मन ही उनका साथी है, ईश्वर को नहीं चाहते और मन के कहने पर ही चलते हैं तो हर समय मन ही उन पर हावी रहता है। फिर शिकायत हैं कि मन नहीं मानता । अपनी तो अपनी रिश्तेदारों तक की फ़िकर पड़ी है । उनकी उलझनों की भी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है । कहते हैं कि फलाँ (अमुक) ने ये बुराई की और फ़लाँ इस तरह खराब है | क्या इसी काम के लिए यहाँ आए थे और क्या यह् काम तुम्हारे ही सुपुर्द है ? ईश्वर तमाम दुनियाँ कां मालिक है । तुम अपने आपको मालिक समझते हो ? तुम ईश्वर का मुक़ाबला करते हो और हो कुछ नहीं । फिर कहते हो कि मन नहीं लगता | फँसे तो तुम खुद हो, गुरु कैसे हटाये। जब तुम खुद निकलना चाहोगे तब गुरु मदद करेगा। मदद उनके लिए है जो निकलना चाहते हैं और उसके लिए कोशिश करते हैं मगर निकल नहीं पाते । चाहते हो कि तुम्हारे दुनियाँ के सब काम भी पुरे होते रहें और दीन भी मिल जाए। यह नहीं हो सकता। एक गुरु नहीं अगर दुनियाँ के सारे गुरु भी ज़ोर लगाएं, लेकिन जब तक तुम खुद नहीं निकालना चाहोगे तब तक कोई मदद नहीं कर सकता ।

सन्त तो दुनियाँ उजाड़ने आते हैं, आग लगाने आ्ते हैं | आग लगाने का मतलब यह है कि दुनियाँ में कर्म करते हुए उसमें फँसो मत, उसे मुख्य मत समझो । मन को दुनियाँ से निकालो और

अपने आपकों भी दुनियाँ से निकालों खुदी (अहं Ego) क्या है ? खुदी यह है कि मन चाहता है कि जिसको चाहूँ अपनी मर्ज़ी के मुताबिक चलाऊ । धर्म पर चलने के बाद भी कोई कोई दुःखी रहता है, ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि खुदी बीच में है । चाहता है जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा ही सब करें | जब तक दुनियाँ तुम्हारे सामने है, तुमने उसी को मुख्य समझ रखा है, तब तक ईश्वर तो मिलता नहीं । इसलिए पहले अपनी सहायता आप करो | तुम खुद फाँसे हो, मन की ज़ंजीरों में तुम ख़ुद जकड़े हो, अगर तुम उन्हें काटना पसन्द करोगे तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा । जब तक उसमें फंसे रहोगे उसमें और अधिक फँसते जाओगे तो दूसरा तुम्हारी क्या मदद करेगा ?

हम खुदा ख्वाही व हम दुनियां ए दू।

ई ख्यालस्तों मुहालस्तों जिनू ॥

(भावार्थ--चाहते हो कि दुनियाँ भी मिल जाय और ईश्वर भी मिल जाय । ऐसा ख्याल करना पागलपन नहीं तो और क्या है ।)

अनानियत (अहंपना)

(असली और नक़ली का भेद)

अनानियत (अहंपना) दो हैं । एक असली और दूसरा नकली । असली अनानियत (अहंपना) ज्ञान से पैदा होती है । और नक़ली अनानियत अज्ञान से ।

जब आदमी अपनी असलियत समझ लेता है । इन्द्रियों, मन और बुद्धि के पर्दों को चाक कर देता है और कहता है कि "मैं ब्रह्म हूँ" "मैं ही हक़ हूँ" तो यह असली अनानियत (अहंपनां) है । नक़ली वह है जो अज्ञान से पैदा होती है । जब आत्मा का अक्स, बुद्धि, मन और इन्द्रियों पर पड़ता है तो इन दोनों की मिलौनी से झुठी-खुदी पैदा हो जाती है । जैसे रस्सी को अंधेरे में देखकर साँप का गुमान हो जाता है या अंधेरी रात में दरख्त की ठूँठ को देखकर आदमी का ख्याल पैदा , हो जाता है या रेत को देखकर पानी का गुमान हो जाता है ।

असली अनानियत भी आखिरी दर्जा नहीं है । यह बीच का दर्जा है । अभ्यासी का फर्ज़ है कि झुठी अनानियत को असली अनानियत में फ़ना (लय) कर दे और-क़दम आगे की तरफ़ बढ़ाये ।

मन को दुनियाँ की इच्छाओं से साफ करते रहें ।

(गोरखपुर, नवम्बर १९६९)

मनुष्य गुरु-कृपा या ईशवर-कृपा के लिए दुआ करता रहता है लेकिन गुरुजनों का कहना है कि यह भूल है । गुरु कृपा या ईश्वर-कृपा हर समय हो रही है, एक पल भी वह बन्द नहीं है । अगर वह बन्द हो जाय तो ज़िन्दगी नहीं रह सकती । फ़र्क सिर्फ महसूस ग़ैर-महसूस (आभास, अनाभास) का है। जिसने अपना पात्र बना लिया है, वह ज्यादा कृपा महसूस करता है और जिंस का अभी अधिकार नहीं है वह कृपा महसूस ही नहीं करता । कृपा का महसूस होना या न होना अधिकार या पात्रता पर निर्भर है । इसलिए कोशिश हमेशा अपने को पांत्र बनाने की करनी चाहिए और उसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए । गंगा बह रही है लेकिन उसमें से मनुष्य उतना ही जल ले सकता है जितना उसके पास पात्र है । जिस के पास लोटा है वह लोटा भर पानी भर लेता है, जिसके पास-घड़ा है वह घड़ा भर पानी भर लेता है। तात्पर्य यह है कि जिसके पास जितना बड़ा बरतन हैं वह उतना ही ज्यादा पानी भर लेता है। सूरज चमक रहा हैं, सब पर गर्मी और रोशनी पड़ रही है, जितना जिसने अपने शरीर गर्म 'रोशनी' के लिए खोल रखा है वह उतनी ही रोशनी और गर्मी पा लेता है । जिसने जितने कपड़े पहने हैं उतना हीं वह उससे वंचित रहता है । आग जल रही है, हजारों ही चीज़ों पास रंखी हैं, किसी में उसका असरं कैसा ही पड़ता है और किसी में कैसा ही।

सब पात्रता और अधिकार पर निर्भर है । गुरु और ईश्वर की कृपा हरेक पर हर समय हो रही है लेकिन जिसने जितने कपड़े मन और माया के पहने हुए हैं, उसे उतनी

ही कृपा कम अनुभव होती हैं । जिसने जितना अपने आप को बना लिया हैं यानी अपने को मोह माया के अलहदा कर रखा हैं वह उतनी ही कृपा ज्यादा महसूस करता हैं। इसलिए पात्र के बनाने की ज़रूरत हैं । अपनी अत्मा पर से मन और माया के पर्दे हटाने को ज़रूरत हैं । पत्थर, वनस्पति, जानवर, मनुष्य, देवता, संत सब पर उसकी कृपा एक सी हो रही हैं, लेकिन अन्तर आभास और अनाभास का हैं, जिसके ज्यादा आवरण हटे हुए हैं उतनी ही ज्यादा कृपा महसूस होती हैं । दूसरी बात यह हैं कि दुनियांदार उसकी कृपा को समझते नहीं। जब आदमी को दुनियाँ की चीजें मिलती हैं, उन में वह खुश होता हैं और समझता हैं कि ईश्वर की बड़ी कृपा हैं । वास्तव में वह ईश्वर से दूर होता जाता हैं उसके और ईश्वर के बीच माया आती जाती हैं । अगर उसकी दुनियाँ की चीज़ों पर आघात होता हैं, जिस से ईश्वर का सामीप्य होता हैं, उस को समझता हैं कि मेरे ऊपर ईश्वर की कृपा नहीं हो रही हैं, हालांकि मामला इसके बिल्कुल विपरीत हैं।

जब दुनियाँ की किसी चीज़ से हमें तकलीफ़ पहुँचती हैं या छीनी जाती हैं तो हमारे बुरे कर्मों की समाप्ति हो जाती हैं और जब कोई दुनियाँ की. चीज़ हासिल होती हैं तो शुभ कर्मों के फल का नाश हो जाता हैं । जो अच्छे कर्म करता हैं उसको अच्छा फल मिलता हैं, जो बुरे कर्म करता हैं उसे बुरा फल मिलता हैं । बुरे कर्मों का फल भोग कर हम छुटकारा नहीं पा सकते । जब उसकी नज़दीकी हो जाती हैं, उसका प्रेम आ जाता हैं, बुरे कर्मों को छोड़ देते हैं तो बाकी सब कर्म खुद ही नाश हो जाते हैं और वह (ईश्वर) सब माफ़ कर देता हैं । हमें दुनियाँ की चीज़ों के मिलने पर जो सुख होता हैं, अगर उसमें विशेष दया आये और दुनियाँ की चीज़ें और मिलें, तो हम कंभी दुनियाँ

नहीं छोड़ सकते । इसलिए उसकी कृपा यह है कि माया के झगड़ों से छूट कर उससे नजदीकी हो जांयं और हमेशा-हमेशा का सुख मिल जाय और दुंखों से हमेशा के लिए मोक्ष मिल जाय ।

लेकिन दुनियाँदार इसका उल्टा समझते हैं, वह ईश्वर से छुटकारे के लिये दुआ नहीं करते, दुनियाँ की चीज़ों को प्राप्त करने लिएं (और इंस तरह यहीं पर फंसे रहने के लिए) दुआ करते रहते हैं । दुनियाँ का एक-एक ज़र्रा, मन की एक-एक ख्वाहिश हमारा हर वक्त विरोध करते हैं कि हमारा अपने असल (ईश्वर) से मिलन न हो । इसलिए जो आदमी दुनियाँ की इच्छाओं में फंसा हुआ है और हर वक्त कोशिश करता रहता है कि ईश्वर की कृपा हम पर न हो, वह तो सच्ची कृपा चाहता ही नहीं बल्कि कृपा का विरोध करता है । जब आत्मा का विकास सन्तों की कृपा और अभ्यास से होने लगता है तभी मालूम होने लगता है कि असली कृपा क्या है ? सांसारिक इच्छाओं से अपने पात्र को बनाना है और जितना यह साफ़ हो जाता है उतनी ही उसकी कृपा - अनुभव होती है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य यह है कि अपने मन को हर संमय दुनियाँ की इच्छाओं से आहिस्ता-आहिस्ता साफ करते रहें ।

ईश्वरीय विचार

जब तक यह शरीर है तब तक खुदी (ममता) है । जीवन मुक्त होने पर भी पूरे तौर से उसका चला जाना मुश्किल है । कुछ न कुछ यह बाक़ी रहती ही है । केले के पत्ते सूख कर गिर जाते हैं मगर उनका निशान पेड़ के तने में बाकी रहता है । यही हाल ममता का है, मगर यह ममता बन्धन का बायस (कारण) नहीं होती ।

विचार दो तरह के होते हैं, बाहरी और अन्दरूनी । किसी फल के छिलके के लिए गिरी (मग़ज़) की ज़रूरत है और मगज़ (गिरी) के लिये छिलके की ज़रूरत है । न छिलके के बगैर गिरी रह सकती है और न गिरी के बगैर छिलका ही रह सकता है । जूता पहन कर तुम कांटों पर चल सकते हो, इसी तरह आत्म-ज्ञान का जूता पहन कर तुम इस कांटेदार दुनियाँ में घूम फिर सकते हो ।

अज्ञान की वजह से इन्सान ईश्वर की तलाश अपने से बाहर करता है । जब आदमी को समझ आ जाती है कि ईश्वर अन्दर है इसी समझ का नाम 'ज्ञान' है ।

क्या तुम को मालूम है कि परमात्मा इन्सान के अंदर किस तरह रहता है ? वह इसी तरह रहता है जैसे शरीफ़ घरों की पर्दों में रहने वाली स्त्रियाँ चिकों में अन्दर रहती हैं। *वह हरेक को देखती हैं और देख सकती हैं लेकिन उनको न तो कोई देखता है और न देख सकता है । बिल्कुल परमात्मा इसी तरह रहता है । रोशनी देना चिराग (दीपक) के लिये स्वाभाविक बात है । उस की रोशनी में कोई रोटी बनाता है, कोई जाल बनाता है और कोई भगवत गीता पढ़ता है । क्या इसमें रोशनी का कुछ क़सूर है ? इसी तरह अगर व्यक्ति परमात्मा का नाम लेकर चोरी करता है तो इसमें परमात्मा का क्या कसूर है । निर्गुण व सगुण में कोई भेद नहीं है । जब परमात्मा को अकर्मक और गुणों से अलहदा समझ कर ध्यान किया जाता है तब बह निरगुण यानी शुद्ध ब्रह्म है और जब

उसका ध्यान गुणों सहित किया जाता है (जैसे पैदा करने बाला, पालने बाला, मारने वाला, आदि) तब वह सगुण कहलाता है । पानी की कई छलें हैं, कभी वह भाप की शक्ल में होता है जब दिखाई नहीं देता और कभी वह बर्फ की शक्ल अख्त्यार कर लेता है ।

सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म दो नहीं हैं । जो सगुण है वही निर्गुण भी है, और जो निर्गुण है वह सगुण भी है। भक्त के लिये वह अनेक रूपों में प्रकट होता है । समुद्र है जिसका न वार है न पार, लेकिन सर्दी की वजह से समुद्र का पानी जम गया है और बर्फ के तख्ते नज़र आते हैं । इसी तरह भक्तों के शीतल ध्यान के प्रताप से बह सर्वव्यापक परमात्मा अपने आप को स्थूल शक्ल में तब्दील कर लेता है और जिस तरह सूरज के निकलने सेबर्फ पिघल जाती है उसी तरह ज्ञान के सूरज के उदय होने पर साकार परमात्मा निराकार में तब्दील हो जाता है । जिस वक्त मरते समय तीरों की शय्या पर भीष्म पितामह लेटे हुए थे, उनकी आँखों से आँसू जारी थे । अर्जून ने श्रीकृष्ण भगवान से कहा कि प्रभु, कैसे ताज्जुब की बात है कि हमारा यह परदादा जो सच्चा आदमी है और इन्द्रियों पर पूरा अख्त्यार रखता है और आत्म-ज्ञान से भी परिपूर्ण है, माया के भ्रम की वजह से रो रहा है । भगवान श्रीकृष्ण ने यह बात भीष्म पितामह से कही । भीष्म ने जवाब दिया कि भगवन् ! आपको मालूम है कि मैं माया की वजह से नहीं रो रहा हूँ। मैं इस बात को सोचने लगा कि आपकी लीला अपरम्पार है और समझ से बाहर है । उसकी मुझे ज़रा भी समझ नहीं है । जिस ईश्वर का नाम लेकर लोग तमाम खतरों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं वही परमात्मा पाण्डवों का रथवान बना हुआ है, उनका साथी और मददगार है और फिर भी पाण्डवों के दुख की कोई इन्तहा (सीमा) नहीं है ।

** पुराने ज़माने में पर्दे की प्रथा प्रंचलितं थी और पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ने वह ज़माना देखा था । प्रतः उन्होंने इस प्रवचन में "'पर्दों में रहने वाली स्त्रियाँ" उदाहरणार्थ लिखा है ।*

सूक्ष्म में अभ्यास की विधि

(ग़ाजियाबाद १७-७-६०, प्रातःकाल)

आत्मा की धार शरीर में चोटी के मुक़ाम पर उतरी है और वहाँ से रीढ़ की हड्डी में होती हुई Coccyx (दुमची) के मुकाम पर ठहर गई हैं और शरीर में इसकी शक्ति Nerves (स्नायुओं) के ज़रिये फैली हुई है । यही जिन्दगी है जिससे यह जिस्म कायम है।

योग के दो तरीके हैं । एक अभ्यास और दूसरा सत्संग, जिनसे आत्मा की धार जो परमात्मा के चरणों से निकलती है वापिस परमात्मा के चरणों में मिलाया जाता है । अभ्यास वह है जो गुरु ने बताया हो । योगियों में प्राणायाम के तरीके से कुण्डलिनी को जगाते हैं, यानी अपनी सांस की धार से गुदा के मुक़ाम पर ओ३म् शब्द की चोट देते हैं । इससे एक तरह की आवाज़ (Vibration) पैदा होती है । बाज़ लोग इसके लिए प्राणायाम के अलावा नेती-धोती, पानी चढ़ाना वग़ैरा की क्रियायें भी काम में लाते हैं । यानी प्राणायाम अन्तर की क्रिया और नेती-धोती व सफाई वग़ैरा बाहरी क्रियाओं से उस मुक़ाक को जगा लेते हैं और आत्मा उस मुकाम से ऊंची उठ कर इन्द्रिय के स्थान पर आ जाती है । वहाँ से भी प्राणायाम वग़ैरा की क्रियाओं से उसे और ऊपर उठाते हैं और नांभि चक्र, हृदय चक्र, कण्ठ चक्र और ऊपर के चक्रों तक वापिस ले जाते हैं । लेकिन सन्तों का तरीक़ा इससे अलग है और सरल है । इनके यहाँ नीचे के तीन चक्र (गुदा, इन्द्रिय और नाभि) को छोड़ दिया जाता है । अभ्यास ज़्यादातर हृदय-चक्र से शुरू कराते हैं । यह मुकाम ऐसा है कि इसके साधने से नीचे के तीनों मुक़ाम और ऊपर के तीनो मुक़ाम अपने आप सध जाते हैं और वक्त बच जाता है । यहाँ पर शब्द या प्रकाश (जो भी बताया जाय) उसका अभ्यास करने से हृदय का मुक़ाम जाग उठता है, आत्मा वहाँ से उठकर ऊपर के मुकाम कण्ठ-चक्र और आज्ञा चक्र की तरफ़ चढ़ने लगती है । आज्ञा-चक्र (जो दोनों भौंहों के बीच में अन्दर की तरफ़ है) उस पर ध्यान जमाया जाता है और गुरु मूर्ति का दर्शन या प्रकाश या शब्द का (जिसका अभ्यासी हो) इस मुक़ाम पर

अभ्यास करने से यह मुक़ाम भी जाकिर (भंकृत) हो जाता हैं । आत्मा और ऊँची उठती हैं । इसके बाद त्रिकुटी के स्थान पर (जो दोनों भोंहों के एक इन्च ऊपर और दो इन्च गहरी-जगह में हैं) अभ्यास किया जाता हैं । त्रिकुटी के आगे सुन्न, महा सुन्न, भंवरगुफा, सत-पुरुष का मुक़ाम और उसके बाद संतों का देश या दयाल देश हैं ।

यह हुआ अभ्यास जो नीचे से ऊपर की तरफ़ किया जाता हैं । यह किसी वक्त भी किया जा सकता हैं । मगर सुबह शाम इसका करना ज़रूरी हैं।

दूसरा हैं सत्संग । यह क्रिया ऊपर से नीचे की तरफ़ होती हैं । इसमें गुरु या सत्संग कराने वाला अपने ख्याल को परमात्मा के चरणों में लगाता हैं और वहाँ से फ़ैज़् खींच कर सत्संगियों पर ख्याल से फैलाता हैं । इस तरड से उस फ़ैज़ की धार को परमात्मा के चरणों से लेकर तमाम सत्संगियों में फेलाता रहता हैं । यह ऊपर से धार लेकर नीचे मिलाना हैं । संत्संगी यह ख्याल करता हैं कि प्रकाश या आत्मा की धार ऊपर से (यानी ईश्वर या गृह की तरफ़ से) आ रही हैं और हमारी चोटी के मुकाम पर उतरती हुई सारे शरीर में फैली जा रही हैं । उस धार में चार चीजें हैं. ज्ञान, प्रेम, प्रकाश और आनन्द । इसी से ज़िन्दगी हैं । अगर यह धार नहीं हैं तो जिन्दगी नामुमकिन हैं ।

यह क्रिया सत्संग में गुरु के सामने बैठे हुए भी होती हैं । गुरुदेव के शरीर में से (त्रिकुटी था हृदय के मुकाम से जहां मे बताया गया हो) प्रकाश की धार निकल रही हैं और वह हमारे त्रिकूटी के मुकाम या चोटी के मुकाम से होती हुई सारे शरीर में फैली हुई हैं। इसमें ज्ञान हैं, प्रेम हैं, प्रकाश हैं और आनन्द हैं । दिन के या रात के किसी भी वक्त गुरु की ख्याली शक्ल सामने रख लेते हैं और आँखें बन्द करके ख्याल करते रहते हैं, इससे ज्यादा फ़ायदा होता हैं। परमात्मा का फैज़ आने लगता हैं और जेसे-जेसे आनन्द और शान्ति महसूस होने लगती हैं, दुनियां के बंधन ढीले होते जाते हैं ।

सन्त-मत की जरुरी बातें

- संत-मत की तालीम बहुत सरल है, बड़ी प्रभाव रखने वाली है । लेकिन इससे फ़ायदा वही उठा सकता है जिसको ईश्वर से मिलने और अपना असली उद्धार करने की सच्ची लगन लगी हो और दुनियाँ से ऊब चुका हो | सन्त-मत में आने से पहले कुछ बातों पर विश्वास लाना ज़रूरी है।

वे बातें यह हैं :--

१. इस पृथ्वी के अलावा और भी लोक लोकान्तर हैं।

२. मनुष्य का जीवन इसी जन्म में ख़तम नहीं हो जाता बल्कि इससे पहले भी जीवन था और बाद में भी जीवन होगा।

३. तमाम रचना का मसाला इस पथ्वी के मसाले के समान नहीं है ।

४. तमाम रचना में इस पृथ्वी की सी ही ज़िन्दगी नहीं है ।

५. इन्सान की देह में सुरत या रूह एक ऐसा कीमती जौहर (अमूल्य रत्न) है जो कभी नाश नहीं होता और जो सत्, चित, आनन्द, (सच्चिदानन्द) रूप है ।

६ देह को रचने वाली और क़ायंम रखने वाली हमारी सुरत है।

७. तमाम रचना को रचने वाला और क़ायम रखने वाला 'कुल मालिक' (परमेश्वर) है ।

८. जैसे विना इन्द्रियों के संसार का ज्ञान नहीं हो सकता, बिना सूक्ष्म और चैतन्य इन्द्रियों के सूक्ष्म और चैतन्य मण्डलों का ज्ञान नहीं हो सकता ।

९. जैसे शरीर को बलवान बनाने के लिए शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता होती है, मन और बुद्धि को जगाने के लिए मन और बुद्धि के साधनों की आवश्यकता होती है । इसी प्रकार आत्मिक शक्ति जगाने के लिए आत्मिक अभ्यास की आवश्यकता होती है ।

१०. इस वर्तमान दशा में सुरत इन स्थूल तत्वों के देश में फंसी हुई है और दुख-सुख उठाती है । इस देश में सुरत के ऊपर मन और शरीर का गिलाफ़ (Covering) पड़ा हुआ है और इस शरीर और मन बनाव सिंगार में तमाम संसार फँसा हुआ है । मनुष्य का कत्तेव्य है कि इस शरीर, मन और बुद्धि के पर्दों को हटा कर सच्चा ज्ञान प्राप्त करे और सच्चा ज्ञान प्राप्त करके सदा के लिए इस जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाय ।

१२. जैसे शरीर की शक्तियाँ जगाने के लिए किसी उस्ताद (शिक्षक) की ज़रूरत है, मन और बुद्धि की शक्तियाँ जगाने के लिए किसी प्रोफेसर की ज़रूरत है इसी प्रकार आत्मा की शक्ति जगाने के लिए "गुरु" की नितान्त ही आवश्यकता है । बिना गुरु की शिक्षा के आत्मिक शक्तियाँ नहीं जाग सकतीं ।

१३. इन बातों पर पूरा विश्वास हो जाने के बाद उसको किसी वफ़ादार कामिल पुरुष (ऐसा सन्त जो आध्यात्मविद्या में पारंगत हो) से उपदेश ले कर अपनी सुरत को ऊँचे और बहतर मंडल में पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिए।

*१४. किसी कामिल पुरुष (पूर्ण सन्त) की शरण लेने से पहले उनकी अच्छी तरह पहिचान कर लेनी चाहिए । केवल दूसरों की देखा देखी या दूसरों से तारीफ़ सुन * कर या ऋद्धि सिद्धि देख कर गुरु मान लेना ठीक नहीं है ।*

१५. गुरु धारण कर लेने पर उनकी तन-मन से सेवा करनी चाहिए । और उनको खुश करना चाहिए । जो युक्ति वे साधन की बतलावें उस पर सख्ती से अमल करना चाहिए । वे जो कुछ आज्ञा दें उसका पालन करना चाहिए । उनकी सेवा में बराबर जाते रहें और जो रास्ते की कठिनाइयाँ हों उनसे निवेदन करें । कोई बात छिपा कर न रखें । सदा सहायता के लिए प्रार्थना करते रहें और हमेशा आदर और नम्रता से पेश आवें ।

१६. जब तक कामयाबी न हो, बराबर यत्न करते रहें और अपनी हालत को परखते रहें, लेकिन जल्दी न करें । किसी बात का हठ न करें । अगर गुरु किसी बात का जबाब न दें और खामोशी अखत्यार कर लें तो खुद भी खामोशी अख्त्यार कर ले ।

१७. जहाँ तक सम्भव हो संसारिक वस्तुओं की माँग न करें। सिर्फ़ अपनी परेशानी कह दें ।

१८.. मन के धोखे से बचे रहें । यह कम्बख्त कुछ चाल चलने पर हजारों धोखे देता हैं ।

१९, जब सच्चे गुरु मिल जावें तो उनको ऐसे पकड़े जैसे शहद की मक्खी शहद को पकड़ती हैं । यानी इधर उधर न भटकें और उनकी सच्चे दिल से भक्ति करें।

इन बातों पर अमल करने पर खोजी को संतमत की शिक्षा से अवश्य लाभ होगा और धुर पद तक पहुँचेगा ।

मन के भ्रम से छुटकारा पाना हैं

(परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

बक्सर ता० २१-१०६९

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार भोगति-भोगते जब वें क्षीणप्रायः हो जाते हैं और संस्कारों के पर्दे झीने रह जाते हैं तो ईश्वर ऐसी आत्माओं पर कृपा करके मनुष्य चोले में भेजता है. ताकि वह चैतन्य वृत्ति को विकसित कर आत्मा पर से उन झीने पर्दों को हटा कर, पवित्र, निर्मल, चैतन्य बना कर चौंरासी के चक्कर से बाहर निकाल दें और अपने परमपिता परमात्मा की गोंद में पुनः वापस हो सकें, तथा परम शान्ति पा सकें । सच तो यह है कि हम यहाँ तजुर्वा हासिल करने के लिए भेजे गये हैं । यहाँ आकर आत्मा दुनियाँवी चीजों में फंस गयी है। हम ज्यों-ज्यों दुनियाँ को अपनाते हैं रूहानियत दबती जाती है। आत्मा पर मन, बुद्धि और ख़्वाहिशात के पर्दे पड़ जाने से वह अपने आपकों भूल गयी है और मन उस पर हावी (अधिकारी) हो गया है ।

यह दुनियाँ मन का ही पसारा है । यहाँ के सभी जीव इस माया के सामान बन गये हैं । हम दुनियाँ की चीज़ों का रस लेते और उन्हीं में आनन्द मानते हैं । विपरीत इसके, आनन्द सिर्फ आत्मा में है, चूंकि हमें उसका ज्ञान नहीं है, हम इन्हीं अस्थायी सुखों को सब कुछ मान बैठे हैं । तजुर्वा करना यही है कि एक-एक चीज़ को भोगें तो पायेंगे कि कोई चीज़ न तो आनन्द देने की शक्ति रखती है और न दे सकती है । जो कुछ भी थोड़ा बहुत सुख हमें मिलता है वह उन चीज़ों से नहीं_ मिलता बल्कि वह तो अपने अंतर में मिलता है जैसे खाने ही को लें- जब तक भूख है उसे हम बड़े चाव से खाते हैं, परन्तु भूख के मिटते ही हमें उसकी चाह नहीं रहतो । अगरं जबरदस्ती कुछ अधिक खा भी लिया जाय तो उसका प्रतिकूल परिणाम मिलता है, यानी शरीर अस्वस्थ हो जाता है । कभी-कभी वही खाना प्राणघातक भी हो जाता है । अगर वास्तविक आनन्द खाने ही में होता तो ऐसा नहीं होना चाहिये था । वही खाना जो कभी-सुख का माध्यम था अब क्यों दुःख का कारण

बना ?. दूसरा उदाहरण किसी खेल का लें। जैसे ताश खेल रहे हैं, बड़ा आनन्द आ रहा है। छोड़ने की तबियत नहीं होती । अगर कोई छेड़-छाड़ करता है तो बुरा लगता है । उसे डाट देते हैं। घण्टों उसी में मशगूल (व्यस्त) रहते हैं पर अगर कोई किसी सगे रिश्तेदारं की बीमारी का या ऐसा ही कोई अन्य दुखद समाचार देता है, हम ताश को फेंककर भाग खड़े होते हैं, उसका सब आनन्द एक तरफ धरा रह जाता है। अतः वास्तविक आनन्द तो कहीं और रहा जिसे हम समझ कर भी मानते नहीं । विषयों का आनन्द तो सब काल व सब अवस्थाओं में ऐसे ही रहा है और रहेगा भी । यह आनन्द क्षणिक है । स्थायी आनन्द तो अत्मा में है, और वह एक-रस है-उसमें घटाव-बढ़ाव नहीं होता।

हम सभी इस काल्पनिक जगत में फंसे हुए हैं और कहते हैं कि संध्या में मन नहीं लगता फ़ायदा नहीं होता। हो भी तो कैसे ? हम चौबीसों घंटे दुनियां की चिंता में अनवरत ढंग से रत हैं, इसी को अपना लक्ष्य मान रखा है सृष्टि के नियमानुसार दुनियाँ तो चलती रही है और आगे भी चलती रहेगी, यह अपनी चाल नहीं बदल सकती, न छोड़ सकती है । इसके कर्म भी हमें करने ही पड़ेंगे। परन्तु हम सतसंगियों को चाहिये कि अपना फ़र्ज़ पूरा करें, तजुर्बा हासिल कर नश्वर पदार्थों से अपना सम्बन्ध विच्छेद करें और सारी वस्तुओं को दृढ़ता से ग्रहण करें। सन्त-जन कभी यह नहीं कहते कि दुनियाँवी फ़र्ज़ न करो । फ़र्ज अवश्य पूरा करो पर ड्यूटी समझकर जैसे संडास में ज़रूरत भर को ही बेठते हो । मान लो कोई काम करना ही पड़े, तो उसे करो परन्तु उसमें फलासक्ति न रखो, वर्ना संस्कार बने बगैर न रहेंगे और अन्ततोगत्वा उन्हें भूगतना भी पड़ेगा । फल त्याग का यह भी मतलब नहीं है कि कर्मफल का सर्वधा परित्याग कर दो नहीं उसे अपने इष्ट के अर्पण कर दो । भला भी उसी का और बुरा भी उसी का । अपना उनमें कुछ भी नहीं। ऐसा करते रहने से संस्कार बनना रुक जायगा और जब संस्कार ही नहीं रहे तो आवागमन कैसा ? यही अधिकारं बनना है। यह कहीं बाहर से नहीं आता और न मिलता है, जो, कुछ-है सब तुम्हारे अन्दर है। मान

लो ' कमरे की सफाई करनी हैं तो पहले यह आवश्यक हैं कि दरवाजे ठीक से बन्द कर लें, फिर उसमें भाड़ू लगाओ, तब तो कमरा ठीक से साफ़ होगा । वर्ना एक तरफ़ तो भाड़ू लगाओ्गे और दूसरी तरफ खिड़कियों और दरवाज़े के रास्ते गर्द गुबार आते रहेंगे और कमरा कभी न साफ़ हो सकेगा । इसी प्रकार हृदय रूपी कमरे को साफ़ करने के लिये ज़रूरी हैं कि पहले उन इन्द्रियों पर बन्द लगावें जो संस्कार बनाती हैं । संस्कार बनने के कई रास्ते हैं- जैसे कान से शब्द को सुनकर, आँखों से देखकर, जिह्वा से स्वाद लेकर और त्वचा से स्पर्श करके । इनमें समता लाओ । फिर सत्-असत् विवेक की कसौटी पर इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को कसो । असत् का परित्याग कर सत् को अपनाओं और वैसा ही अपना सहज स्वभाव बना लो । फिर तुम्हें सन्तों के संग में जाने, उन सदवचनों को सुनने और समझने पर जन्म-जन्मान्तर के दबे संस्कारों को उभारने का मौका हाथ आयेगा । जब वे संस्कार उभरें - उन्हें परमात्मा की ऐन कृपा समझ कर भोग लो । जहां अपने को कमज़ोर पाओ, उनसे दुआ करो, वे तुम्हें भोगने की शकित देंगे । इस तरह सतत् प्रयत्न करते-करते तुम अपने हृदय की सफाई कर सकोगे, तब तुममें अधिकार जागेगा । अपनी चेष्टा से यह कदापि नहीं हो सकता । सत्गुरु की ओट लो । उनके चरणों में अपने को समर्पण कर दो । निरन्तर उनका ध्यान करो और उन्हीं में लय हो जाओ। उनकी ही कृपा से मन मरेगा, आपा टूटेगा और आत्म-साक्षात्कार होगा । रास्ता चलने से कटता हैं। इसको कहाँ तक खोलकर समझाया जाय । वाणी भी किसी हद तक ही जा सकती हैं । अनहद' में तो सिर्फ आत्मा ही गम्य हैं इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब पीछे रह जाते हैं ।

अभी तो हम मन के घेरे में हैं । वह हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाये हुए हैं । एक के बाद अनेकों वासनायें हमें चक्कर में घुमा रही हैं । कभी हम बाल बच्चों में फंसे हैं तो कभी रिश्तेदारों में । कभी कुछ चाहते हैं तो कभी कुछ। इन्हीं में सारा सुख मान रहे हैं, निगाह ऊपर को जाती ही नहीं । अगर थोड़ी देर के लिये सन्तों की सौहबत में जा बैठते हैं तो क्षणिक बैराग होता हैं, परन्तु ज्यों ही वहाँ से

हटे नहीं माया फिर दबोच लेती है और काल के कुंचक्र में नचाने लगती है । कहां तो हम आये थे कि फ़र्ज पूरा करर्ा तजुर्वा हासिल करें और सबसे अलहदा हो जायें, दुनियाँ के किसी झगड़े से मतलब न रखें; कहाँ इसी को सब कुछ मानकर उसी में उलझ कर रह गये। जब तक दुनियाँ की क़दर हमारे दिल में है, ईश्वर से प्यार नहीं होगा और न परमार्थ की कमाई हो सकेगी । हम सब खुद ही अपने को दुनियाँ में फंसाए हुए हैं । दुनियाँ तो स्वतः जड़ है वह क्या किसी को फंसायेगी ? हम स्वयं जब तक इससे बाहर न निकलना चाहें तब तक न तो गुरु की मदद काम देगी और न परमात्मा की । सन्त कभी किसी को दुनियाँ नहीं देता, बल्कि वह तो उसे उजाड़ कर जीव को ईश्वर से मिला देता है ।

हम दुनियाँ में फंसे हुए हैं । हम अपना सम्बन्ध दुनियाँ से उतना ही रखें जितना कि मात्र जीने भर को आवश्यक हो वर्ना सबसे अलहदा हो जायें । इज्जत, आवरू, मान-मर्यादा, नातेदार-रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी सब दिखावे के हैं । उनका मोह जो हमें जकड़े हुए है वही असली दुःख का कारण है । मन चाहता है कि सभी उसके कहने में चलें, उसक़ी इज्ज़त करें । यही मन का भ्रम है । इसे तोड़ दो और धर्म पर आ जाओ । न किसी से राग हो न द्वेष, बगैर पूछे किसी को राय न दो और न किसी से छेड़-छाड़ करो--सबसे अलहदगी अखत्यार करो और इनसे निकल भागो | जब तुम्हारे अन्दर सच्ची चाह निकलने की होगी--गुरु और ईश्वर सभी मदद के लिये आ जायेंगे तो-तूम्हें खोजना नहीं पड़ेगा । वे बाहर तो हैं नहीं, अपितु तुम्हारे अन्दर हैं | हाँ, तुम उन्हें पहचानते नहीं, इसीलिये मारे-मारे फिरते हो । सच्चे दिल से उसे पुकारो, मदद अवश्य मिलेगी । गुरु हमें दुनियाँ से कैसे निकालता है, मिसाल के तौर पर सुनो । बचपन में मुझे जुआ खेलने का तो नहीं वल्कि देखने का बहुत शौक था । जहाँ कहीं जुआ खेला जाता, मैं बहाँ अवश्य जाता और दिलचस्पी के साथ वहाँ घण्टों समय व्यतीत करता । एक बार ऐसा हुआ कि दिवाली के दिन जनाव 'लाला जी (महात्मा रामचन्द्र जी महाराज- मेरे गुरुदेव) मेरे यहाँ पधारे हुए थे । रात को जुआ देखने के लिए

मैं बेचैन था । लाला जी जब सो गयें, मैं भाग कर वहाँ गया जहाँ जुआ खेला जा रहा था और रात तक वहाँ रहा । दूसरे दिन कहीं सड़क पर जुआ हो रहा था । मैं वहाँ भी खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा । शाम को जब मैं सत्संग में आयां तो किसी बहन ने लाला जी से कहा कि भाई साहब भी तो जुआ खेलते हैं । लाला जी ने पूछा- कौन ? श्रीकृष्ण ? "बहन ने कहा--जीं हाँ, श्रीकृष्ण ।" उन्होंने अपना मुह दोनों हाथों से ढक कर, दहाड़ें. मार कर रोना शुरू किया और काफी देर तक रोते रहे। मैं किकर्तव्यमूढ़ होकर रह गया, सहंमा और डरा, सिर झुकाये बैठा रहा | इसके बाद भी लाला जी ने मुझ से कुछ नहीं कहा लेकिन उस के बांद मेरी वह आदत हमेंशा-हमेशा के लिये छूट गई |

अभ्यासियों का एंक महान शत्रु काम है । इन्सान के अन्दर प्रेम की मांद्दा है । आम तौर पर देखा जाता है कि यह प्रेम वासनामय ही है । कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में वासना का अंग उसमें समाया हुआ है । मन स्वभावतः दुनियाँ, का रसिया है । एक को पूरी तरह भोग भी नहीं पाता कि दूसरी चाह आ बैठती है । अत : वह प्रेम और कुछ नहीं ग़लीज़ है । असल प्रेम तो आत्मा कीं विंषय है । प्रेम का दूसरा नाम ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। ज़ब तक मन कां प्रेम आत्मा से न जुड़ेगा, संच्चा.. प्रेम नहीं मिल सकता । मने काप्लगौंक आत्मा से है । वह उसी से सब कुछ करता धरता हैं। झाता तो रब कुछ बहीं करती माया का एक प्रमुख विकारी है, भागा दैंशा मं अत १५ यह | हावी है और जैसा चाहता है उसे सचाता रहता है। काम शक्ति मन ही के आधीन है । एकांत इसका सबसे बड़ा सहायक है । जहाँ तक सम्भव हो, जब तक तुम मन के स्थान पर हो , काम शक्ति को न उभरने दो । जब कभी इसका जोर हो, फौरन एकांत का परित्याग कर दो, वर्ना यह ढेर कर देगा । सभी सत्संगी भाइयों और बहनों को ऐसी परिस्थिति में पूर्ण सतर्कता बर्तनी चाहिये । पुरुषों को किसी भी गैर स्त्री, चाहे माँ ही क्यों ने हो के साथ और स्त्रियों को गैर पुरुष के साथ एकांत में रहना वर्जित है । ज़रूरत के मुताबिक पुरुष अपनी धर्मपत्नी को और स्त्री अपने पति को अवश्य साथ ले ले--वर्ना धोखा खाना पड़ेंगा । पर-स्त्री-गमन सबसे बड़ा अपराध है, सन्तमत इसे

क्षमा नहीं करता । ऐसा व्यक्ति सन्तमत से निकाल दिया जाता है । Sex (काम वासना) का enjoyment (भोग). एक दफा कर लेने के बाद, मन आसानी से वहाँ से नहीं मोड़ा जा सकता । अपनी स्त्री का भी संग Duty sake (कर्त्तव्य मात्र) होना चाहिये । अपनी तरफ से अगर इच्छा उत्पन्त हो तो उसे फौरन दबाने का प्रयत्न करना चाहिये वर्ना अभ्यास ठीक नहीं हो पायेगा | यह नहीं समझते कि जिस शक्ति को व्यर्थ खोने में इतना आनन्द मिलता है तो इसे बचाये रखने में (कितना अधिक आनन्द मिलेगा ।' इसी प्रकार, सब इन्द्रियों को regulate करो । ज़रूरत के मुताबिक़ उनका इस्तेमाल-करो, ताकि कम से कम शक्ति का ह्रास हो और इधर से उपार्जित की हुई-शक्ति को ईश्वर के पंथ पर लगा दो।

आनन्द का श्रोत

(प्रवचन परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सिकन्द्राबाद (उ०प्र०) दिनांक-२१-१०-६६.

इन्सान का मन एक बेजान चीज़ है । उसमें स्वयं कोई शक्ति नहीं है लेकिन वह आत्मा से शक्ति लेकर अपना काम करता रहता है । वह हर समय इच्छाएं उठाया करता है । जब कोई इच्छा पूरी हो जाती है तो उसको खुशी हासिल होती है और जब कोई इच्छा पूरी नहीं होती तो दुःख होता है । आदमी अज्ञानवश यह समझता है कि मन की इच्छाओं के पूरा होने में ही आनन्द है परन्तु उसे यह नहीं मालूम कि ऐसा आनन्द हमेशा बदलता रहता है और सदा एक सा नहीं रहता । सदा एक सा रहने वाला आनन्द आत्मा का आनन्द होता है जिसका अनुभव तब होता है जब मनुष्य मन से हट कर आत्मा के स्थान पर अपना घाट बना लेता है । बचपन में. गुल्ली-डंडा खेलने में या पतंग उड़ाने में बड़ा आनन्द आता था जो अब नहीं आता है । इसकी कारण यही है कि अब मन की हालत बदल गई है । जैसे-जैसे मन की हालत बदलती है । वैसे-वैसे मन का आनन्द भी बदलता जाता हैं । आत्मा कभी नहीं बदलती इसलिए उसका आनन्द भी नहीं बदलता । पहले हमारी सुरत (Attention) गुल्ली-डंडे या पतंग तक ही सीमित थी लेकिन अब हमारी सुरत दूसरी चीज़ों में लग गई है, इसलिए कोई चीज़ स्थायी (Everlasting) नज़र नहीं आती और हाल यह है कि दुनियाँ के व्यवहार में सुरत जहाँ या जिस वस्तु में केन्द्रित हो जाती है उसी में आनन्द आने लगता है ।

हम और आप, मन नहीं हैं बल्कि आत्माएं हैं और इस लिहाज़ से आनन्द का समूह या केन्द्र हम खुद हैं । परन्तु आत्मा के असली आनन्द को छोड़कर हम दुनियाँ की छोटी-छोटी चीजों के आनन्द में फंस कर मरते रहते हैं । जो लोग सन्तमत के अनुयायी हैं और आंतरिक अभ्यास कर रहे हैं उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि जब मन में कोई विचार नहीं उठता जिसे (Thoughtlessness) कहते हैं उसी हालत में सबसे अधिक आनन्द महसूस होता है । यही Self

Realization-(आत्मानुभव) हैं । मन भी शांत हैं और इन्द्रियाँ भी शांत हैं, बस आनन्द ही आनन्द की हालत हैं । यहीं से सच्चा ज्ञान पैदा होता हैं । इसके अलावा जो ज्ञान हैं वह इन्द्रिय-ज्ञान (Sensuary knowledge) हैं।

Self Realization--(आत्मानुभव) क्या हैं ? आत्मानुभव यही हैं कि सत्संग से या अभ्यास से अपने मन को दुनियाँ से मोड़ कर आत्मा में स्थित कर दो । व्यवहार में, बोलचाल. में, रोज़ाना की जिंदगी में सच्चाई हो | जिससे भी प्रेम हो उसमें कोई ग़रज़ न हो, सभी जीव-जन्तुओ प्राणियों और चराचर में ईश्वर का आभास हो | फिर आनन्द ही आनन्द हैं । यह आनन्द तब होसिल होता हैः जब मन की सच्ची शान्ति हो किसी से न कुछ लेना और न कुछ देना । कोई ग़रज़ नहीं । यही सच्चा ज्ञान हैं । यही ऐसी शान्ति हैं जो कभी नहीं मिंटतीं और यही ऐसा आनन्द हैं जो कंभी फीका नहीं पड़ता । मन को काबू में करो | इसके बहकावे में मतं आओ । अभी तंक मन आत्मा को दबाए हुए हैं यानी आत्मा नीचें हैं मन ऊँपर हैं । करना यह हैं कि आत्मा ऊपर हो और मन उसके नीचे हो, यही सच्चा अभ्यास हैं ।

हम गुरु की शक्ल को थोड़े ही पूजते हैं । हम उसकी आत्मा को पूजते हैं । सन्यासी लोग अपनी ही आत्मा को पूजते हैं । ऋषि लोग "अहम् ब्रह्मास्मि' का अभ्यास करते हैं यानी अपने आपको ब्रह्म समझ कर पूजा करते हैं । वे लोग अक्सर गुरु नहीं करते । असली गुरु तो Light (परमात्मा का प्रकाश) हैं । इसी का ख्याल करना हैं । जब इसमें तदरूपता आ जाती हैं यानी अपनी आत्मा व ईश्वर की आत्मा एक हो जाती हैं तब वे जानवर कीड़ों-मकोड़ों और जड़ चेतन्य में ईश्वर का ही रूप देखते हैं । उनकी दृष्टि असीम हो'जाती हैं । इसलिए Hindu Philosophy बहुत ऊँची हैं । दुनियाँ मुसीबत की जगह नहीं हैं । तुम ने उसे ऐसा बना रखा हैं चूंकि उसमें तुम अपनी खुदी (Ego) को देखते हो । तुमने अपना ध्यान दुनियाँ की तरह-तरह की स्थल चीज़ों में लगा रखा

हैं,। फिर भला सच्चा आनन्द कहाँ से मिले ? दुनियाँ की हर चीज़ ,नाशवान हैं; इसलिए उसका आनन्द भी नाशवान हैं । अपना ध्यान किसी ऐसे व्यक्ति में जमा दो जो स्थूल रुप होते हुएं भी आत्मा का साक्षात्कार कर चुका हो । ऐसे ही लोग गुरु कहलाते हैं । गुरु की आत्मा के ध्यान और ईश्वर के ध्यान में कोई फ़र्क नहीं हैं। गुरु का ध्यानः करने से मन और बुद्धि अपने आप, शुद्ध हो जाते हैं और आत्मा निर्लेप हो जाती हैं । उसको पुख़ता करने में देर लगेगी परन्तु शुद्धता आ जायेगी और फिर उस पर ऐसा विश्वास पक्का हो जायेगा कि हट नहीं सकेगा, यह प्रेम का तरीका हैं । जहाँ एक बार गुरु से सच्चा प्रेम हुआ वहाँ अपनी शक्ति से गुरु ने अनुभव करा दिया उस पर अमल करना तुम्हारा काम हैं । जब तक तुम गुरु में लय नहीं हो जाओगे तब तक जो गुरु ने अनुभव कराया हैं आत्मा उसी के लिए तड़पेगी मन और आत्मा का स्वभाव विपरीत हैं । आत्मा जिस चीज़ को पक़ड़ेगी उसे पकड़ती ही चली जायेगी और उस तरफ बढ़ती ही चली जायेगी परन्तु मन जिस चीज़ को पकड़ता हैं- उसे छोड़त जाता हैं। अगर उलझे नहीं और छोड़ता जाये तो यह गुरुकृपा हैं जो कि अपने आप नहीं हो सकता ।

प्रेम-मार्ग और कर्म-मार्ग दोनों रास्ते एक से ही हैं । परन्तु प्रेम का रास्ता सुगम हैं क्योंकि प्रेम के वश होकर गुरु शिष्य के लिए सबं कुछ कर देता हैं । पाँच घोड़े हमारी इन्द्रियाँ हैं । प्रीतम हमारे सामने हैं। हम एक को पकड़ते हैं तो दूसरा छूट जाता हैं । कोचवान (मन) साथ नहीं देता । बुद्धि लाख समझाती हैं पर मन नहीं मानता और अन्त में बुद्धि मन के काबू में आ जाती हैं । इसी Disorganisation (विघटन) को Organise (व्यवस्थित) करना हैं । इसी पर अंकुश करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को गुरु मान लो जिसने आत्मा का अनुभव कर लिया, हैं और दूसरो को भी अनुभव कराने की शक्ति रखता हैं । गुरु के कहने में चल कर मन को इस तरह क़ाबू में करो कि वह-बुद्धि के कहने में चले ओर आत्मा उसके फन्दे से न्यारी होकर ईश्वर की तरफ़ लग जाये । मन

को बुद्धि के हवाले कर दो, बुद्धि को आत्मा के हवाले कर दो, और आत्मा ईश्वर के हवाले कर दो। यही ईश्वर का पाना है।

आदमी की रीढ़ की हड्डी (Spinal chord) के अन्दर की बनावट इस तरह की है कि उसमें अनगिनत बारीक-बारीक तार लगे हुए हैं। जब सुरत को ऊपर खेंचा जाता है तो उन्हीं तारों के ज़रिये वह ऊपर चढ़ती है. और जगह-जगह चक्रों (Nerve Centres) को पार करती हुई खोपड़ी में चोटी के मुकाम पर (Medulla Oblongata) पर पहुँच जाती है जहाँ आत्मा का स्थान है। सुरत की यह चढ़ाई नीचे से ऊपर को करनी पड़ती है लेकिन आदमी की सुरत का फंसाव मन में होने के कारण सुरत का बहाव नीचे की तरफ यानी दुनियाँ की चीज़ों में हो रहा है। अधोमुखी वृत्ति है। उसको ऊध्वेमुखी बनाना है। सन्तों की भाषा में इस क्रिया को उलट धार करना कहते हैं। इसका तरीक़ा यह है कि गुरु के कहने में चलो। पहले मन पर निगरानी रखो। उस में उठती हुई इच्छाओ को धीरे-धीरे कम करते,चलो और मन को काबू में करो। लेकिन मंन को काबू में करना ही लक्ष्य प्राप्त करना नहीं है। ऐसी भी इच्छाएं हैं जो मन की Sub Conscious Stage (सुप्त चेतन) अवस्था में पड़ी हुई हैं। इनका भी सुधार करना है। जब मोटी-मोटी इच्छाओ को सुधार लेते हैं और उन का ख्याल नहीं रहता तब नीचे के ख्याल आते हैं जो दबी हुई अवस्था में होते हैं और जिन्हें हमने कभी सोचा भी नहीं था। यही पुराने संस्कार हैं. इन्हें भी साफ़ करना है। कुछ भोगने से साफ़ होते हैं और कुछ ईश्वर-कृपा से। गांधीजी ने कहा है कि जागृत अवस्था में तो हम-अपने ऊपर Control (नियंत्रण) कर लेते हैं लेंकिन सोते में नहीं कर पाते। इसलिए जो स्वप्न आते हैं वे हमारा असली रूप हैं। हमारे अन्तर-मन से जो ख्याल टकराते हैं वही स्वप्न में आते हैं। हमने स्वप्न में देखा कि बादशाह बन गए या देखा कि चोर बन गए, हथकड़ी पड़ गयीं और क्रमशः उस का सुख-दुख होने लगा। जब जागे तो वो सब चीज़ें ग़ायब हो गई। न बादशाह बनने का सुख है और न हथकड़ी पड़ने का. दुःख। इसी तरह आत्मा मन के बन्धन में पड़ कर सोई हुई अवस्था में सुख

दुख का अनुभव करती हैं । लेकिन जब मन के फन्दे से न्यारी हो जाती हैं और संस्कारों को भोग कर निलेप हो जाती हैं तब यह संसार सपना सा लगता हैं । इसके सुख दुख नहीं व्यापतेः। आत्मा को परमात्मा का ज्ञान हो जाता हैं तब मनुष्य यह समझता हैं कि मैं तो आत्मस्वरूप हूँ । अब कहाँ हैं वह दुःख व सुख ?

मनुष्य का मन उसे तरह-तरह के खेल सिखाता हैं । उस पर चौंकसी रखने से आत्मा दृष्टा बन जाती हैं । ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने भोग-भोगता रहता हैं और जो होना हैं वह होता हैं । अपने आप को गुरु के ध्यान में लीन कर दें । हमारा मन हमें तमाशा दिखा रहा हैं और हम बेठे हुए देख रहे हैं । ऐसा सोच कर दुनियाँ का तमाशा देखो, दृष्टा बन जाओ और कहो कि हे ईश्वर, यह भी तेरा, वह भी तेरा, अच्छा भी तेरा, बुरा भी तेरा, पाप भी तेरा, पुण्य भी तेरा, तेरा-तेरा-तेरा । इस तरह माया से छूट जाओगे । और यदि सोचोगे कि यह मेरा हैं तो दुनियाँ में फंसते चले जाओगे। अपनी Attention (सुरत) को मालिक के ख्याल में लगा दो तो देखोगे कि शरीर का भान भी नहीं रहता । दर्दे होता हो तो वह मालूम नहीं पड़ता। Physical Body (स्थूल शरीर) से अपने ध्यान (Attention) को खींच कर Mental body (सुक्ष्म शरीर) में लगा देन से शारीरिक पीड़ा का आभास नहीं होता । अब अगर Attention (ध्यान, सुरत) को Mental body (सूक्ष्म शरीर) से हटा कर Soul (आत्मा) पर लगा दें तो कितनी ही मानसिक व्यथा क्यो न हो, महसूस नहीं होती । अपने केन्द्र (ईश्वर) में अगर आपने अपने ध्यान को जमा दिया हैं तों उस हालत में आप जो कुछ भी कर रहे हैं सब ईश्वर के हुक्म से हो रहा हैं । अगर आप उसके ध्यान में बेठ हैं तो आपके हरेक काम का जिम्मेदार वह (ईश्वर) हैं । आपका पहला और असली काम अपनी रहनी सहनी का सम्भालना जब मन में कोई ख्याल नहीं होता तब ज्ञान ऊपर से उतरता कौंन सा ख्याल कहाँ से आया और कहाँ गया इसका कुछ पता नहीं लगता । सभी लहरें आत्मा से उठता हैं और उसी में समा जाती हैं । यही चिन्तन हैं ! गुरुदेव सब का कल्याण करें।

सागर के मोती

ईश्वर प्राप्ति के दो ही सरल रास्ते हैं :-- एक 'प्रेम' और दूसरी 'दीनता '। जिस साधन से यह दोनों बातें न हों वह रास्ता ग़लत है ।

दूसरों के कथित अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए । अपनी त्रुटियाँ देखनी चाहिए और उनका सुधार करना चाहिए । इससे दीनता आती है ।

जीवन के प्रत्येक व्यवहार करते समय यह ख्याल रखना चाहिए कि मेरी जगह गुरु ने ले ली है। यही सहज-योग है ।

कोई भी कर्म जो ईश्वर से दूर ले जाय 'पाप' है । जो कर्म ईश्वर की नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो, वही पुण्य है ।

भोगने की वनिस्वत भोगने की इच्छा ज्यादा नुक़सान करती है।

किसी स्त्री के मुह की ओर मत देखो, पैरों की ओर देखो ।

परमसन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज ।